UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180009

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1 P92A Accession No. P. G. H1514

Author प्रीतम, अमृता

Title अन्तिम पत्र · 1956 .

This book should be returned on or before the date last marked below.

अन्तिम पत्र

कहानी

लेखिका की अन्य कृतियां

❀ डा० देव
❀ पिंजर
❀ घोंसला

हिंदिया प्रकाशन,
१०४३, बाजार सीताराम,
दिल्ली

अन्तिम पत्र

[आठ मौलिक कहानियों का संग्रह]

लेखिका
अमृता प्रीतम

हिंदिया प्रकाशन,
१०४३, बाजार सीताराम,
दिल्ली

प्रकाशक
हिंदिया प्रकाशन
दिल्ली

प्रथम संस्करण
१९५६
मूल्य दो रुपया

मुद्रक
सम्राट् प्रेस
पहाड़ी धीरज देहली

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
१. पांच बहिनें	६
२. कंजक	२५
३. एक पत्र	३५
४. कमीन	४३
५. कई साल पहले	५७
६. दो राहा	६५
७. हड्डियाँ और फूल	७५
८. अन्तिम पत्र	

अवलोकन

यद्यपि अमृता प्रीतम हिन्दी की लेखिका नहीं हैं, किन्तु इधर कई वर्षों से उनकी कहानियाँ हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में मुझे देखने को मिलीं। और आज उनका कथा-संग्रह 'अन्तिम पत्र' मेरे सामने है। संग्रह की प्रत्येक कहानी को मैंने ध्यान से पढ़ा है। सभी अंतर को छू लेती हैं। भावों की लेखिका धनी है। उसकी कहानी के प्रत्येक पात्र में लौकिक चिन्ताधारा का समावेश है। किसी भी कहानी की कथावस्तु बोझिल नहीं होने पाई है। ऐसा लगता है, मानो प्रत्येक कहानी अपने अन्तर में एक रहस्य लिये है। रहस्य और रोमाँच कहानी के प्रधान अंग हैं। अमृता प्रीतम ने इन दोनों का अपनी कहानियों में अच्छा निर्वाह किया ।

अक्सर लम्बी कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते व्यक्ति ऊब जाता है। कहानी संक्षेप में लिखने की कला में लेखिका कुशल है। 'अन्तिम पत्र' के पाठकों को इसमें मनोरंजन की सामग्री के साथ-साथ अपनी नित्य की समस्यायें मिलेंगी, जिनके अन्तिम छोर पर उनका समाधान भी जुड़ा है। कहानियाँ अधिक छोटी तो नहीं हैं, लेकिन बड़ी भी नहीं। अमृता प्रीतम को मैं इसके लिये बधाई दिये बिना नहीं रहूँगा कि उन्होंने कहानियों को रोचक

बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा। एक बार पढ़ जाने पर कहानी निरन्तर अन्तर से टकराती रहती है।

संग्रह की पहली कहानी है 'पाँच बहनें'। यद्यपि उसकी कथा-वस्तु एक विचित्र आश्चर्य की सृष्टि करती है, लेकिन साथ ही वर्तमान का जीवित चित्र भी अंकित करती है। ऐसे ही 'कंजक' में एक कसक है और है एक हृदय स्पर्शी मर्म। 'हड्डियाँ और फूल' कहानी में मानवीय प्रेम साकार हो उठा है।

इस प्रकार सब कहानियों को आद्योपान्त पढ़ जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि जिन समस्याओं को लेखिका ने उठाया है वे समस्त जनवर्ग की हैं और लेखिका ने अपने जीवन में सभी पहलुओं का गहन अध्ययन किया है।

मैं सच्चे हृदय से श्रीमती अमृता प्रीतम को बधाई देता हूँ। और आशा करता हूँ कि भविष्य में इससे भी अनमोल नगीने उनकी कलम से नवीनता और निर्माण का समावेश लिये निकलते रहेंगे।

२३—१—५६

कमल शुक्ल

७८/२५६ अनवर गंज,
कानपुर।

पांच बहिनें

पांच बहिनें

एक विशाल देश की बात है, एक दिन ठण्डे बिल्लौरी जल ने जिंदगी के सुँन्दर अङ्गों को मल मल कर धोया, फूलों ने जी भरकर सुगंधि लगाई, और सातों रंग जिंदगी के लिए एक पोशाक ले आए। सूर्य ने अपनी किरणों द्वारा फूलों में रस भरा, और जिंदगी ने अपनी आँखों में एक पूर्णता-सी भरकर पवन से कहा—

"सुना है इस शताब्दी की पांच पुत्रियां हैं, जवान और सुन्दर।"

"हां"।

"आज मैं उनके घर जाऊंगी।"

पवन हंस दिया।

"मेरे पास पांच सौग़ाते हैं, एक जैसी मूल्यवान, मैं उन सबको एक-एक सौगात दूंगी। तुम चलोगे मेरे साथ ?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"सब से पहिले पांचों बहिनों में से मैं बड़ी बहिन के पास जाऊंगी।"

"अच्छी बात है, परन्तु उसके घर में खिड़कियां और दरवाजे नहीं हैं। बस एक ही दरवाजा है। उसका पति जब बाहिर जाता है तो जाते हुए वह बाहर से दरवाजे को लोहे का ताला लगा जाता है, और फिर जब घर आता है, तो वही ताला बाहर से खोलकर घर के भीतर लगा देता है।"

"तुम मुझे अपने अंदर भर लो, एक सुगंधि की तरह, मैं तुम्हारे साथ उसके घर चली जाऊंगी।"

'न, न, सुगंधियों के साथ मैं भारी हो जाता हूं, तब मैं किसी दराज में से भी भीतर नहीं जा सकता। जितने समय में मैं दीवारों को लांघ कर उसके घर जाता हूं, उतने समय में तो मेरा भी अंग-अंग टूटने लगता है।"

पवन जिंदगी को पांच बहिनों में से बड़ी बहिन के घर ले गया।

"इस बड़ी दीवार पर तो बहुत सी तस्वीरें बनी हुई हैं, सैकड़ों तस्वीरें, हजारों तस्वीरें"—जिंदगी ने हैरान होकर देखा।'

"यह दीवार सदियों से बनी हुई है, जब भी इस घर की कोई स्त्री इन सीमाओं को लांघे बिना इस घर में मर जाती है तो इस देश के लोग उसकी तस्वीर इस दीवार पर बना देते हैं।"

"इस घर की कोई भी स्त्री इन सीमाओं से बाहिर नहीं आती ?"

"न, कभी नहीं।"

"इन दीवारों का नाम क्या है ?"

"परम्पराएं, कोई कुल की परम्परा है, कोई धर्म की परम्परा है, तो कोई समाज की परम्परा....."

"पर मैं इस घर की स्त्री को एक बार देखना चाहती हूं।"

"सूर्य की किरणों ने भी कभी इस घर की औरतों को नहीं देखा, तुम भला कैसे देखोगी ?"

"यह बीसवीं सदी है पवन ! तुम कौन सी सदी की बात कर रहे हो ?"

"यहां सदियां घर के बाहर से ही निकल जाती हैं, भले ही दस सदियां इधर-उधर हो जाएं, इस घर में रहने वालों को कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

"मैं उसके लिए भेंट लाई हूं।"

"तुम्हारी भेंट उस तक पहुंच भी जाए तो भी वह उसे हाथ न लगाएगी।"

"क्यों ?"

"क्योंकि दुनिया की सब चीज़ें उसके लिए वर्जित हैं।"

"वह मेरी आवाज़ नहीं सुनेगी ?"

"नहीं, उसके कानों के लिए इस दीवार के बाहर से आने वाली सब आवाजें निषिद्ध हैं।"

"तुम भी क्या बातें करते हो पवन, आखिर वह जवान है ?"

"तुम वर्षों का हिसाब लगा रही हो, पर इस घर की औरत कभी जवान नहीं होती, जब वह बालिका होती है तभी उस पर बुढ़ापा आ जाता है।"

जिंदगी के पांव में एक कम्पन सी आई, और हारी सी, सहमी सी आगे की ओर चल पड़ी।

× × ×

"यह इस शताब्दी की दूसरी पुत्री है।" पवन ने कहा।

"कौन सी ?"

"वह सामने रेल की पटरी पर कोयले चुन रही है।"

तीसेक वर्ष की एक स्त्री ने बाँए हाथ से, बग़ल के पास फट रही कमीज को दुपट्टे के पल्लू से ढांप लिया, दांए हाथ से टोकरी में मुठ्ठी भर कोयले डाले, कोई दसेक गज की दूरी पर पड़ी हुई अपनी लड़की को देखा। लड़की के रोने की आवाज़ अब और तीखी हो गई थी। स्त्री ने टोकरी को एक ओर रख दिया और लड़की को अपनी गोद में ले लिया लड़की ने मां की छाती पर कई बार मुंह मारा, पर उसे दूध का धोखा न लग सका और वह फिर चिल्ला कर रो पड़ी। जिंदगी ने समीप जाकर आवाज़ दी, "बहिन !"

स्त्री ने शायद सुनी ही नहीं।

जिंदगी और भी समीप गई और बोली—"बहिन !" स्त्री ने अनजानी दष्टि से एक बार देखा और फिर ध्यान दूसरी ओर कर लिया

जैसे सोच रही हो कि किसी और को आवाज़ दी गई है।

जिंदगी के अधर जैसे तड़प उठे, "मेरी बहिन," स्त्री ने तब उसकी ओर देखा और लापरवाही से पूछा—"तुम कौन हो ?"

"मुझे जिंदगी कहते हैं।"

स्त्री ने फिर अपना ध्यान अपनी रोती हुई लड़की की ओर कर लिया, जैसे राह चलते की बात से उसे क्या मतलब ?

"मैं तुम्हारे देश आई हूँ; तुम्हारे शहर, तुम्हारे घर।" देश, शहर और घर वाली बात जैसे उस स्त्री की समझ में न आई।

"आज मैं तुम्हारे घर रहूँगी।"

स्त्री ने क्रोध से जिंदगी के मुख की ओर देखा, जैसे जिंदगी को यह न चाहिए था कि इस तरह का व्यंग करे।

"लड़की को दूध क्यों नहीं दे रही हो, बेचारी रो रही है।"

स्त्री ने एक बार अपने सूखे हुए शरीर पर निगाह दौड़ाई, दूसरी बार लड़की के रोते हुए मुख पर, फिर भी वह समझ न सकी कि इस सवाल का मतलब क्या था ?

यदि उसके पास दूध होता तो बच्ची को देती न।

"तुम्हारा घर कितनी दूर है ?"

"उस गंदे नाले के पार।"

"मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"पर वहाँ घर कोई नहीं, फूंस का छप्पर है।"

"वहीं सही।"

"पर वहाँ चारपाई कोई नहीं, बस दो बोरियाँ है।"

"तुम्हारा पति ?"

"वह बीमार है।"

"काम क्या करता है ?"

"कारखाने में मजदूर था, पर पिछले वर्ष जब छटनी हुई थी तब

उसे निकाल दिया गया था।"

"फिर ?"

"एक वर्ष हो गया उसे बुखार आते।"

"तुम्हारी यह एक पुत्री ही है ?"

"एक मेरा पुत्र भी है पर......"

"वह कहाँ है ?

"एक दिन वह भूखा था, बहुत भूखा, उसने एक अमीर आदमी की मोटर में से सेब चुरा लिया था, पुलिस वालों ने उसे जेल में दे दिया।"

"मैं तुम्हारे घर चलूँ ?"

"पर तुम हो कौन ?"

"मुझे जिंदगी कहते हैं।"

"मैंने तो कभी तुम्हारा नाम नहीं सुना।"

"कभी, कभी छोटी उम्र में, छुटपन में तुमने कहानियां सुनी होंगी।"

'मेरी मां को बड़ी कहानियाँ याद थीं। मेरा पिता किसान था पर वहउन किसानों में से था जिनके पास अपनी कोई ज़मीन नहीं होती। मेरीबड़ी बहिन के विवाह पर हमने कर्ज लिया था जो हम से वापिस न किया जा सका। साहूकार ने हमारा सब माल हमारे पशु आदि सब कुछ छीन लिया था, और मेरा पिता कहीं दूर किसी रोजी की तलाश में चला गया था। मेरी मां को रात भर नींद न आती थी, वह रात को मुझे जगाकर कहानियाँ सुनाया करती थी, भूतों की, प्रेतों की, देवों की कहानियाँ, पर मैंने तुम्हारा नाम तो कभी नहीं सुना।"

"फिर तुम्हारा पिता क्या कमाकर लाया था ?"

"मेरी मां कहा करती थी कि जब वह आएगा, बहुत सा सोना लाएगा, पर वह कभी आया ही नहीं लौट कर," और स्त्री ने जरा घबरा कर कहा—" [illegible] घर जाकर ?"

"मैं....." जिंदगी और कुछ न कह सकी, स्त्री कोयले की टोकरी थामे उठ खड़ी हुई।

"मैं तुम्हारे लिए सौगात लाई हूं," जिंदगी ने रंग और सुगंध भरी एक पिटारी स्त्री के सामने रख दी।

"न बहिन, यह तुम अपने पास ही रक्खो" स्त्री ने जैसे भयभीत हो आँखें दूर हटा लीं।

"मैं तुम्हारे लिए ही लाई हूं।"

"न बहिन, कल को पुलिस वाले कहेंगे, तूने किसी की चोरी कर ली है।"

स्त्री शीघ्रता से अपने घर की ओर मुड़ी, पर थोड़ी दूर जाकर जब उसने देखा कि जिंदगी अब भी उसके पीछे-पीछे आ रही है, तो वह डर कर थम गई।

"तुम लौट जाओ बहिन! मेरे साथ मत आओ। मुझे बेगानों से बहुत डर लगता है, पहिले भी एक बार...एक बार एक जवान सा शहरी आया था। कहने लगा, मैं तुम्हारे पति को काम दिला दूँगा, तुम्हारे बेटे को जेल से छुड़ा दूँगा.....पड़ौसियों से आटा मांग कर मैंने उसके लिए रोटी पकाई.....पर जब मैं अपने पुत्र को देखने के लिए उसके साथ शहर गई.....तो रास्ते में.....रास्ते में वह..."

स्त्री का अंग-अंग जल उठा, और वह बेतहाशा वहाँ से भाग पड़ी।

× × ×

जिंदगी की आँखों में छलक रहे आँसुओं को पवन ने अपनी हथेली से पोंछ दिया—

"चलो मैं तुम्हें तीसरी बहिन के घर लिए चलता हूँ।"

जिंदगी जब महल सरीखे एक घर के सामने से गुजरी तो पवन ने धीमे से उसके कान में कहा—"यही है उसका घर।"

द्वार पर खड़े दरबान ने जिंदगी की राह रोक ली। दासी के पास भीतर संदेशा भेजा गया, जिंदगी बाहर प्रतिक्षा में खड़ी रही, खड़ी रही—और जब उसे भीतर जाने का इशारा हुआ, तो वह उस दासी के पीछे-पीछे काँच के कई द्वारों को लाँघती, रेशम के कई पर्दे हटाती खास कमरे में पहुँची।

सफेद मर्मरी पत्थर की एक औरत की मूर्ति कमरे के एक कौने में खड़ी थी, पानी की फुहार उसके बदन को ढाँप सी रही थी। सफेद मर्मरी पत्थर सी एक औरत की मूर्ति एक कोमल सी कुर्सी पर पड़ी थी। सिल्क की तारें उसके बदन को ढांपने का यत्न सा कर रही थीं।

औरत की खड़ी मूर्ति में से तो कोई आवाज़ न आई, पर औरत की बैठी हुई मूर्ति में से आवाज़ आई—

"तुम कौन हो ? मैं पहचान नहीं पाई।" जिंदगी ने भौंचक सी चारों ओर देखा, पर वहाँ कोई स्त्री न थी। तब उसने खड़ी हुई मूर्ति को हाथ लगाया, वह पत्थर सी सख्त थी, तब जिंदगी ने बैठी हुई मूर्ति को स्पर्श किया, वह रबड़ सी मुलायम थी।

"मुझे जिंदगी कहते हैं" जिंदगी ने धीरे से कहा—"याद नहीं आ रहा, पर यह नाम कहीं सुना हुआ प्रतीत होता है शायद छुटपन में किसी पुस्तक में पढ़ा था।"

"पुस्तक में ?"

"हाँ मुझे याद आ गया मेरे साथ एक लड़का पढ़ा करता था, वह गीत लिखा करता था, एक बार उसने मुझे अपने गीतों की एक किताब दी थी, उसमें यह नाम आया था।"

"वह अब कहाँ रहता है ?"

"गरीब सा लड़का था, पता नहीं कहाँ रहता है ?',

"उसकी किताब ?"

"इस नयी कोठी में आते समय पुराना सामान में साथ नहीं लाई

थी, यह सारा सामान हमने नया खरीदा है ?"

"बहुत महंगा खरीदा है।"

"मेरा पति देश का बहुत बड़ा व्यक्ति है। अब कि चुनाव में भी मुझे आशा है, वह फिर बड़ा व्यक्ति चुना जाएगा। हम जब भी चाहें ऐसा या इससे भी अच्छा सामान खरीद सकते हैं।"

रबड़ जैसी मुलायम स्त्री की मूर्त्ति ने मेज पर रक्खे हुए फल जिंदगी की ओर बढ़ाए।

फलों को छूते ही जिंदगी को उनमें से एक गंध सी अनुभव हुई।

"मैंने अभी कम-करों से ताजे फल तुड़वाए हैं, दासी ने शायद धोए नहीं, कम-करों के हाथों की गंध आती होगी, आज गर्मी नहीं ? मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं, आज.....।"

"यदि तुम्हें अच्छा लगे, तो मैं तुम्हें बाहर ठंडी और खुली हवा में ले चलती हूँ।" जिंदगी ने एक सांस भर कर कहा।

"नहीं नहीं, इस तरह मैं बाहर नहीं जा सकती, अपनी श्रेणी से बाहर के लोगों में उठने बैठने से हमारा आदर नहीं रहता.....असल में जब मेरा आपरेशन हुआ था, कुछ कसर रह गई थी, कभी-कभी मुझे दर्द होता है.....।"

जिंदगी ने उठकर उस रबड़ जैसी मुलायम स्त्री की भुजा पकड़ी, फिर उसके बदन पर हाथ रक्खा, "तुम्हारा दिल क्यों नहीं धड़कता, पत्थर की तरह खामोश और ठंडा है....."

"यही तो कसर रह गई है, मेरा पति कहता है, अब हम किसी बाहर के देश जाएँगे.....शायद अमेरिका, वहाँ के डाक्टर बड़े कुशल हैं, मेरा आप्रेशन शायद फिर होगा.....?"

"किस बात का आप्रेशन है ?"

"जब कोई लड़की 'बड़ेघर' में व्याही आती है, विवाह की पहली रात

को देश के कुशल डाक्टर उसका ऑपरेशन करते हैं, यह बड़े घरों की रीति है....."

"विवाह की रात को आपरेशन !"

"हाँ, उस लड़की के बदन को चीर कर उसका दिल बाहर निकाल लेते हैं। उसकी जगह स्वर्ण की एक शिला रख देते हैं, बड़ी सुन्दर शिला, बड़ी मूल्यवान होती है, मेरे आपरेशन में थोड़ी सी कसर रह गई थी, कभी-कभी कसक सी उठती है। इन चुनावों में मेरा पति यदि जीत गया तो हम आगामी मास में हवाई जहाज द्वारा बाहर जाएँगे, फिर मेरा आपरेशन होगा, और मैं ठीक हो जाऊँगी।"

"मैं तुम्हारे लिए एक सौगात लाई हूँ।"

"नहीं नहीं,—मेरे पति ने कहा हुआ है कि आजकल किसी से कोई चीज नहीं लेनी, चुनाव निकट आ गए हैं—और देश की बड़ी-बड़ी मिलों में हमारी पत्ती है, हमें यह छोटी-छोटी चीजें लेने की क्या आवश्यकता है.....।"

टेलीफोन की घंटी बजी, और रबड़ जैसी मुलायम स्त्री ने टेलीफोन में दो तीन मिनट बात करके पास बैठी हुई जिंदगी से कहा—

"बहिन, तुम्हें यदि मुझ से कोई काम है तो कभी फिरआ जाना, इस समय मेरा पति और उसकी पार्टी के कुछ लोग घर आ रहे हैं....."

× × ×

पवन ने जिंदगी का हाथ थाम लिया और उसे सहारा देकर चौथी बहनि के घर ले आई।

बड़ा साधारण सा घर था, पर घर के द्वार के सामने तक चमकती हुई गाड़ी का मुंह आँखों को चौंधिया रहा था। संध्या होने वाली थी, जिंदगी ने घर की सीमा लांघ कर भीतर की ओर झांककर देखा। बाईस-तेईस बर्ष की एक जवान स्त्री एक बालक को थपकी देकर सुला रही थी, कमरे का सारा सामान मुश्किल से गुजारे लायक था तो भी

युवती के वस्त्र झिलमिल-झिलमिल कर रहे थे।

जिंदगी ने धीरे से द्वार खटखटाया।

"कौन ? धीरे से....." युवती दहलीज के पास आई, "बच्चा जग जाएगा," तब युवती ने चौंककर कहा, "तुम.....तुम....."उसके बोल लड़खड़ा गए।

"मुझे जिंदगी कहते हैं।"

"मुझे मालूम है।"

"तुझे मालूम है ?"

"मैं सारी उम्र तुम्हारी परछाईं के पीछे भागती रही हूँ...अब मैं थक चुकी हूँ, अब मैंने तुम्हारा रास्ता छोड़ दिया है। तुम चली जाओ, जहाँ से आई हो वहीं लौट जाओ, देख नहीं रही हो, मेरे द्वार पर शाप की एक रेखा खिंची हुई है, इस रेखा को तुम नहीं लांघ सकतीं, इस रेखा को मिटा नहीं सकतीं, तुम चली जाओ, चली जाओ....." युवती की साँस फूल गई।

"मेरी अच्छी बहिन"

"बहिन...मैं किसी की बहिन नहीं, मैं किसी की बेटी नहीं, मैं किसी की कुछ नहीं।"

"यह तुम्हारा बच्चा," जिंदगी ने कमरे में सोए पड़े बच्चे को देखा।

"मेरा बच्चा, मेरा बच्चा,...पर इसका बाप कोई नहीं"

"मैं समझी नहीं।"

"जब मेरे देश में आज़ादी की नींव रक्खी गई थी, उसकी नींव में मेरी हड्डियाँ चुनी गई थीं,...जब मेरे देश में स्वतंत्रता का पौदा लगाया गया था, मेरे रक्त से उस पौदे को सींचा गया था, जिस रात मेरे देश में खुशी का चिराग जलाया गया, उसी रात मेरी ईज्जत और आबरु के पल्लु को आग लगी थी, यह बच्चा.....यह बच्चा उसी रात की

निशानी है, उस आग की राख है, उस जख्म का दाग है..."

"मेरी दुखी बहिन।"

"फिर मेरी सब रातें उस रात जैसी हो गईं...मैं तुम्हारे सपने देखा करती थी, मैं सोचती थी तुम मेरे कुंआरे सपनों को मेंहदी लगाकर रंग दोगी, मेरी मां के सहन में देश के गीत गाए जायेंगे, और मैं अपने कानों से शहनाई की आवाज सुनूंगी,...।

मेरे गाँव का एक कड़ी जैसा जवान लड़का मेरे सपनों का राजा था...मै तुम्हारी परछाईं से खेलती फिरती थी, जब मेरा गाँव लुटा, मेरा पिता बुरी तरह मारा गया मेरे भाई मारे गए, और मुझे एक साँप ने काट लिया, फिर एक और साँप ने, एक और साँप ने..... मनुष्य जैसे मुँहवाले यह कैसे साँप हैं, जिनका काटा मरता तो नहीं पर उम्र भर उनके विष से जलता रहता है.. फिर मैंने तुम्हारी एक और परछाईं देखी, मेरे देश के लोग कहने लगे, इन साँपों से मुझे बचा लिया जाएगा,---इनका जहर मेरे शरीर में से दूर कर दिया जाएगा, मैं फिर पहिले जैसी भोली और स्वच्छ लड़की बन जाऊँगी,...मैं भागी, तुम्हारी परछाईं के पीछे भागी,...पर यह सब झूठ था, यह सब झूठ, मेरे सपने के राजा ने मुझे स्वीकार न किया, मुझे अपनी घर की सीमाओं से वापस लौटा दिया...मैं फिर उसी विष में जलने लगी, उन्हीं साँपों जैसे और सांप मेरे इर्द-गिर्द लिपट गए।... बाहर वह गाड़ी देख रही हो ? कितनी चमक रही है...वह एक बहुत बड़े साँप की मोटर गाड़ी है...आज रात मुझे यह काटेगा...।"

जिंदगी बोल न सकी, उसके हाथों में पकड़ी सौगात उसके आँसुओं से भीग गई।

"यह तुम क्या लाई हो, सौगात, मेरे लिए ? देख नहीं रही हो, मेरा सारा शरीर विष से बुझा हुआ है, मैं जब तुम्हारी सौगातों को हाथ लगाऊँगी, यह भी विषैली हो जाएँगी, यह सुगधियाँ यह रंग...

मेरे रोम-रोम में विष रचा हुआ है, विष...विष..."

× × ×

पवन ने बेसुध जिंदगी के मुख पर अपने वस्त्र से हवा की और जब जिंदगी को कुछ सुध आई, पवन उसे पाँचों में सब से छोटी बहिन के घर ले गया...

बीस वर्ष की एक मानवी युवती के आस-पास बहुत सी पुस्तकें, साज़ और रंग बिखरे पड़े थे।

जिंदगी ने सुख का एक साँस भरा, सामने बैठी उस युवती ने अपनी उंगली से साज़ के तार को छोड़ा, और एक मीठा सा गीत वातावरण में बिखर गया, युवती गाती रही...उसकी आँखों में सितार, जैसे आँसू चमक रथे, और फिर उसने रंगों की बारीक सी रेखाओं से एक कागज़ पर बड़ी रंगीन तस्वीर बनाई।

जिंदगी का दिल चाहा कि उस युवती के कलाकार हाथों को चूम ले, स्वर, शब्द और चित्रों का एक जादू वातावरण में घुल रहा था।

जिंदगी ने एक गहरी साँस भरी और हाथ में रंग और सुगन्ध की पिटारी लिए आगे बढ़ी।

युवती की आँखों में एक अचम्भा सा भर गया।

"मुझे जिंदगी कहते हैं।"

"मुझे मालूम है" युवती बोली, पर उसके स्वागत के लिए उठकर आगे न बढी।

अचानक जिंदगी के पाँव अटक गए, लोहे के बारीक तार कमरे के दरवाजे के सामने ऊँचे उठ रहे थे।

"मैं इस समय तुम्हारा स्वागत नहीं कर सकती" युवती ने सिर झुका लिया।

"क्यों ?" जिंदगी हैरान थी।

"यदि तुम रात को आओ, जिस समय मैं सो जाऊँ, मेरे सपनों में

या फिर जाग रही होऊँ, मेरी कल्पना में, मैं तुम्हारे साथ बहुत बातें करूँगी, बहुत कुछ सुनाऊँगी,...वैसे भी नित तुम्हारी परछाईं पकड़ती हूँ,...यह देखो, इन रंगों से तुम्हारा आँचल बनाया है,...इन तारों के स्पर्श से मैंने तुम्हारे गीत गाए हैं ..इस लेखनी से मैंने तुम्हारे प्यार की कहानियाँ रची हैं।"

"आज जब मैं स्वयं तुम्हारे पास आई हूँ...तुम..."

धीरे, बहुत धीरे, मेरे घर की सभी दीवारों में छेद हैं ..सैकड़ों और हजारों आँखें मेरी रखवाली करती हैं, उधर देखो उन छेदों में.. तुम्हें हर एक छेद में दो भयानक आँखें दिखाई देंगी, यह आँखें लावे से भरी हुई है, और एक-एक ज़बान.....इनमें से सैकड़ों तीर निकलते है।.....यदि मैं तुम्हारे पास बैठ जाऊँ, तुम्हारे पास···इनके तीर अभी मेरी रंग भरी प्यालियों को उलट देंगे,...मेरे साज़ के तार उलझा देंगे,.....मेरे गीतों के एक २ स्वर को बींध देंगे.....और इन आँखों का लावा..."

"पर यह लोग तुम्हारे गीत सुनते हैं, तुम्हारी कहानियाँ पढ़ते हैं, तुम्हारे चित्रों को देखते है..."

"यहाँ के कलाकार तुम्हारी बातें कर सकते हैं, पर तुम्हारा मुँह नहीं देख सकते। और जो तुम्हारा मुख देख ले उस मंसूर को मौत की सजा दी जाती है।.....अब तुम चली जाओ, जिन्दगी ! कोई देख लेगा.....मेरे सपनों के अतिरिक्त ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ मैं तुम्हें बिठा सकूँ....."

"मैं तुम्हारे लिए एक सौगात लाई थी।"

"यह भी मैं उसी समय लूंगी.....जरूर आना.....मैं सातों स्वर्ग रचाऊँगी, तुम आना, तुम्हारी सौगात से अपने स्वर्ग सजाऊँगी,... तुम जरूर आना.....और फिर सुबह उठकर मैं तुम्हारे प्यार का गीत

लिखूंगी, तुम्हारे रूप का चित्र बनाऊँगी, तुम्हारी सुन्दरता के गीत गाऊँगी.....पर अब तुम चली जाओ, कोई देख लेगा....." और युवती ने जिन्दगी की ओर से मुँह फेर लिया।

कंजक

कंजक

रात का पिछला पहर अभी सवेरा नहीं बना था कि वह चारपाई से उठ बैठी। वह नित्य योंही जल्दी जाग पड़ती थी, आज तो उसका सातवां 'नौराता' (नवरात्र) था।

जाली वाली आलमारी में उसन सिंघाड़े का आटा पोटली में बांध कर रख छोड़ा था। चूल्हे में उसन दो-चार सूखी छपटियां जलाकर पांच-छः आलू उबलने के लिए चढ़ा दिए थे। आज वह गेहूं के दाने को मुँह न लगाएगी।

उसे खयाल आया कि अगले दिन उसे और भी जल्दी जागना होगा, क्योंकि उस दिन अष्टमी होगी और वह कन्या-पूजन करेगी। वह सोच रही थी कल सवेरे सूखे चने बनाऊँगी, सूखे आलू छौंकूँगी। पूरियों के लिए उसने बारीक आटा अलग छानकर रख लिया था और हलवे के लिए बड़ी लिहाजदारी से मंगवाई गई सूजी भी कई दिनों से अलग बांध-कर रख छोड़ी थी। वह ज्योति जलाएगी, कन्याओं को बुलाएगी, उनके चरण धोएगी, उनके मस्तक पर रोली के तिलक लगाएगी, मौली के धागे उनकी कलाइयों में बांधेगी, फिर पूरियां, हलवा, चने और आलू उनकी थालियों में परोसेगी, साथ में एक-एक पैसा या टका रखेगी, फिर उनके चरण छुएगी और उन्हें मस्तक नवाएगी कुमारी कन्याओं को और बालकों को भी, बालक जो कन्या के साथ लौंकड़े कहलाते हैं।

उसे याद आया वह मुश्किल से ९ वर्ष की थी जब एक दिन उसने गलाबी सूनर ओढ़ी थी, कच्चे शरबती रंग की कांच की चूड़ियां चढ़ाई

थीं और माता की धर्म बहन अपनी मौसी के घर कुमारिक-पूजन के लिए गई थी। उसकी मौसी का सगा भतीजा, कोमल काया वाला बालक, वीर लौंकड़ा बना कन्याओं के बीच बैठा था।

और एक दिन क्या हुआ, वह अभी नौ-दस वर्ष की कन्या ही थी और उसकी मौसी का भतीजा भी इतना ही बड़ा था—दस-बारह वर्ष का वीर लौंकड़ा ही—कि उन दोनों की शादी हो गई। वीर लौंकड़े ने सेहरे बांधे और कुमारी कन्या डोली चढ़ी।

गौना तो अभी दो वर्ष बाद होना था, बस रात के लिए ससुराल में मेहमान रहकर वह पीहर आ गई थी। लोग कहते थे अब वह कुमारी कन्या नहीं रही, वधू बन गई है।

दो वर्ष पूरे होने में अभी एक वर्ष और तीन महीने बाकी थे कि एक दिन उसके पीहर में सभी रोने लगे। लोग कह रहे थे, वह अब बधू नहीं विधवा थी। मर जाने वाले बालक को उसने मरते हुए भी अपनी आंखों से नहीं देखा, उसने उसे घोड़ी चढ़े हुए भी नहीं देखा था, उसे तो केवल यही याद था कि एक दिन वह गुलाबी चूनर ओढ़े कच्चे शरबती रंग की चूड़ियां पहने अपनी माता की धर्मबहन के घर कुमारिका-पूजन के लिए गई थी। उन्हीं कन्याओं में मां की धर्मबहन का भतीजा भी बीर लौंकड़ा बनकर आया हुआ था।

कल वह कन्याओं का पूजन करेगी, उनके नन्हें-नन्हें चरण धोएगी, उनकी नरम कलाइयों में मौली के मंगल-सूत्र बांधेगी, उन्हें मस्तक नवाएगी। वह स्वयं इस समय ६० वर्ष से कुछ ऊपर ही होगी, और वे कुंआरी कन्यायें·····उसका मस्तक झुक गया और झुकता-झुकता पांव की ओर बढ़ गया। उसके पांव फैल गए थे, मैल भरी एड़ियों को उसने कभी रगड़कर साफ नहीं किया था, पांव में बिवाइयां फट रही थीं। वह कांप उठी कन्याओं के चरण तो नन्हें-नन्हें गोरे चिट्टे होते हैं, कन्याओं की कलाइयां गोल-गोल होती हैं, उसकी नजर अपनी कलाइयों

पर गई। उसकी कलाइयां चौड़ी-चपटी हो गई थी; ढलकते मांस पर पड़ते हुए बल ही जैसे कांच की चूड़ियां बन गए थे।

उसका दिल धक-धक करने लगा, कल मोढ़ों की पंक्ति पर नन्हीं-नन्हीं कन्याएं बैठेंगी और वह उन्हें मस्तक नवाएगी। उसका दिल यों धड़क रहा था जैसे लोहे की निहाई पर हथौड़े की चोट पड़ रही हो, उसे यों लगा जैसे वह स्वयं मोढ़ों की पंक्ति में कन्याओं के बीच बैठी है। कन्याओं के चरण धोए गए, कन्याओं की कलाइयों में मंगल-सूत्र बांधे गए, कन्याओं के मस्तक पर तिलक लगाए गए, कन्याओं ने सिर पर चूनरें ओढ़ीं। भगवती की जगमग करती ज्योति के सामने जब सभी कन्याओं ने मस्तक नवाए तब उसकी चूनर के नीचे से उनका सफेद सिर निकाल आया। "अम्मा", रसोई के साथ वाले कमरे से आवाज आई। उसके विचार वहीं थम गए, उसे याद आया कि उसने आलू उबालने के लिए चूल्हे पर चढ़ा रखे हैं और उसे मालती को सुबह को चाय देनी है।

"आई बेटी", उसने कहा और आलुओं का पतीला उतार कर चाय का पानी रख दिया।

मालती उसकी अपनी पुत्री नहीं थी। उसकी देवरानी की पुत्री थी। वह स्वयं जब १० वर्ष की थी और उसके ससुर के पुत्र की मृत्यु हुई थी तब लोगों ने उसे गहने-कपड़े पहनाए थे और सहन के बीच पीढ़ी पर बैठाकर सारे गांव की स्त्रियां खूब रोई-पीटी थीं।

शादी के दो वर्ष बाद उसे ससुराल आना था, परन्तु गौना लाने वाला मर गया। इसलिए दो वर्ष पूरे होने में अभी एक वर्ष और तीन महीने बाकी थे कि वह ससुराल आ गई, ससुराल वालों के मरने वाले पुत्र की लाज बचाने के लिए आ गई।

धीरे-धीरे अपनी आयु भोगकर उसके सास-ससुर भी मर गए, मां-बाप भी मर गए। उसका एक देवर था और एक देवरानी, वह उन्हीं के पास रहने लगी। देवर के मृत भाई की लाज रखने के लिए उन्हीं के पास रहती रही।

पहले-पहल उसकी देवरानी के घर कोई पुत्र पैदा न हुआ तो देवरानी सोच में मरती रही कि वह जब मर जाएगी तब उसकी अरथी के विमान पर फूल-बताशे कौन फेंकेगा, छुआरे कौन फेंकेगा, पितरों को पानी कौन देगा।

फिर कई दवा-दारू, टोने-टोटके किए गए, तब कहीं जाकर उसकी देवरानी के पुत्र हुआ, एक हुआ, दो हुए, दूसरे वर्ष उसकी देवरानी के सन्तान होती और वह उन्हें पालती रहती। अब तो वह भी बिना गति के नहीं मर सकती, मरने वाले की न सही, उसके भाई की संतान तो उसपर से फूल-बताशे फेंकेगी, छुआरे फेंकेगी।

सभी बच्चे उसे अम्मा कहकर ही बुलाते थे। उनका देवर भी उसे भाभी नहीं, अम्मा कहकर पुकारता था, वह जानता था कि उसकी भाभी विधवा है, भले ही वह बहू न बन सकी। वह उसे अम्मा कहकर ही बुलाता था, वह जानता था कि वह मां भी नहीं बन सकी।

चाय का पानी खौल रहा था, उसने छोटी चायदानी में चाय की पत्तियां डालीं, पानी की धार बांधकर डाली, पानी सफेद से लाल-काला हो गया। कांच की प्याली को उसने बहुत संभालकर उठाया, थाल में चाय, दूध, चीनी, प्याली सब कुछ रखकर वह मालती के कमरे की ओर चल दी।

पलंग पर लेटी हुई मालती के पास ही छोटी तिपाई पर उसने थाली को सहज ही रख दिया। वह इन कांच और चीनी के बरतनों से बड़ा डरती थी। जरा-सी हिल-डुल हुई कि टूट पड़ती थीं। वह तो उम्र भर कांसी के कटोरे में लस्सी पीती रही और चाय वह सदा पीतल के गिलास में पीती थी। पिछले तीन-चार साल में उसको अम्मा कहने वाले उसकी देवरानी के पुत्र-पुत्रियां जवान हो चले थे, कालिजों में पढ़ने लगे थे। अब वे गिलासों में चाय न पीते थे। वे कई दिनों में अम्मा को यह समझा पाए थे कि चीनी के कौन-से बरतन में वह चाय का पानी और कौन-से में दूध डालकर दे। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि चाय में

चीनी वे अपनी इच्छा से जितनी चाहें डाल लिया करेंगे। जब तक उसके अपने हाथ की बात थी वह सभी बच्चों को मलाई डालकर दूध पिलाती रही थी। अब तो वे काली-स्याह-सी, बुरी-सी चाय जैसी कि वह उपले पाथने वाली कम्पो को मिट्टी के सकोरे में डालकर दिया करती थी, पीने लगे थे। पर अब उसके बस की बात न थी। वह तो अब भी उन्हें मलाई वाला दूध पिलाना चाहती थी, पर वे बताते थे कि भैंस का गाढ़ा दूध बुद्धि को मोटी कर देता है, इसलिए वे पतली चाय ही पियेंगे।

कल से घर में वह लड़का भी आया हुआ था जिसके साथ मालती की शादी होने वाली थी। वह साथ वाले कमरे में सोता था। मालती ने अम्मा से कहा कि वह उसे भी चाय पहुंचा दे। दोनों कमरों के बीच एक दरवाजा था, अम्मा ने दरवाजा पारकर उसे भी चाय पहुंचाई। जब वह चादर हटाकर पलंग से उठा तब अम्मा के कानों में खटाक की आवाज आई, कांच की दो-तीन चूड़ियां पलंग से गिरकर नीचे धरती पर आ रहीं। अम्मा चली गई। मालती ने कल जो चूड़ियां चढ़वाई थीं वे उसके भावी वर मंगेतर के कमरे में गिरी पड़ी थीं।

अम्मा चाय देकर लौट ही रही थी कि कमरे की दहलीज पार करते ही जैसे उसके पांव फर्श के साथ जुड़कर रह गए। खटाक की आवाज मालती ने सुन ली थी। उसने अम्मा का ध्यान बटाने के लिए कहा...

"अम्मा आज ही वह दिन है न जब तू हमारे हाथों में मंगल-सूत्र बांधेगी, तिलक लगाएगी और हलवा-पूड़ी खिलाएगी ?"

"नहीं बेटी, आज नहीं कल", अम्मा इससे अधिक कुछ न कह सकी, रसोईघर में लौट आई। उसे खयाल आ रहा था कि कल कन्याओं की पंक्ति बैठेगी-छोटी-बड़ी कन्याएं। मालती भी कन्या है, कुमारी है और वह स्वयं वृद्धा होते हुए भी सबको मस्तक नवाएगी। सोचते-सोचते उसके माथे पर त्रिवली पड़ गई, माथा अकड़ गया, स्थिर हो गया, जैसे अब झुक नहीं सकता था। दस, बारह, पन्द्रह, बीस वर्ष तक भी कन्या

रहना कौन-सा कठिन है और वह साठ बरस से कन्या है, उसका वयो-वृद्ध मस्तक कल मालती के सामने झुकेगा।

अम्मा को खयाल आया कि शादी के अवसर पर एक सुहाग गाया जाता है।

देईं वे बाबला ओस घरे
जित्थे शादियां वेखांगी नित्त।

[पिताजी मुझे उस घर में देना जहां रोज शादियां देखूँ] साथ ही उसे यह भी खयाल आया कि लड़कियां गाती हैं—

नैहर कंढे देईं बाबला,
गुस्सा चढ़े ते धड़म छाल मारां।

बाबल मुझे नहर के किनारे के नजदीक ब्याह दो, यदि क्रोध आ जाए तो जाकर नदी में कूद पड़ूं।

अम्मा उबले हुए आलुओं को छीलकर सिंघाड़े के आटे में सान रही थी। उसके हाथ थम गए। शादियाँ कभी दूल्हे के बिना भी होती हैं, पर वह गुस्सा भी करे तो किसपर, किसके सिर चढ़ वह नहर में छलांग लगाए।

भरपूर जवानी उसने पिंजरे में पड़े शेर की तरह काट दी थी। वह पेट भर खाती भी नहीं थी कि कहीं अंगों में इतना बल न आ जाए कि उसमें पिंजरों की सलाखों को तोड़ने का विचार पैदा हो। वह नई ब्याही लड़कियों के पास भी न बैठती थी, जिससे उसके जड़ पत्थर हो रहे अंगों में कोई नई चेतना न जाग पड़े। वह शांत रहती थी, पानी की तरह शांत। गरमियों की रातों में जब वह खुली छत पर सोती थी तब कभी चढ़े हुए चांद की ओर न देखती थी जिससे कि शांत जल में कोई लहर पैदा न हो जाए। अपने मकान की दीवारों के साथ चिपक-चिपक-कर उसने अपनी जवानी काट दी थी।

फिर उसके भरे हुए अंग ढलने लगे, उसके बालों की स्याही भागने

लगी। उसने सुख की सांस ली, कठिन समय टलता जा रहा था, मृत व्यक्ति की लाज वह पूर्णतया निभा रही थी।

कभी-कभी जब आधी रात को वह जाग पड़ती, पांसे पलटती, नींद भूले से भी न आती तब वह सोचती, मरने वाले के चेहरे का ध्यान करती। पर उसने तो उसे केवल एक ही बार देखा था, जब वह सिर से पांव तक बस लौंकड़ा था और वह कन्या थी। वह उस चेहरे को पति क रूप में अपने सामने लाना चाहती थी, पर उसने वीर लौंकड़े को पति क रूप में देखा ही न था।

साठ वर्ष से ऊपर की हो गई थी, वर्ष में दो बार नवरात्र के व्रत रखती थी, खेती बीजती थी, कन्या-पूजन करती थी। कई कन्याएं आते वर्ष में कन्या से दुलहन बन जाती थीं। उसे याद था कि कई कन्याओं की तो पुत्रियों को उसने कन्या के रूप में पूजा था। वह कभी न चूकती थी, हर बार नवरात्र रखती थी, कन्याएं रहट की घड़ियां-सी आतीं, पूजन करवातीं और चली जातीं। खाली घड़ियां भर जातीं, कोई भी कन्या सारी आयु कन्या न बनी रहतीं और वह प्रति वर्ष नई कन्याएं पूज लेती। कहते हैं, व्रत-नियम का पालन करने से मृत व्यक्ति की आत्मा को शांति मिलती है, उसे इसी बात का विश्वास था कि उसने कोई नियम कोई व्रत भंग नहीं किया, वह मरने वाले के लिए शांति संजो रही थी।

आज उसे यों लगा जैसे धरती दो टूक हो गई है, मरने वाला उसका कौन था ? उसने कभी जाकर न पूछा कि तेरे दिन कैसे कटते हैं, तेरी रातें किस तरह बीतती थीं, तेरी जवानी कैसे कटी, तू कैसे बुढापे के दिन काटेगी। वह जप करती थी, नियम-पालन करती थी, जीवन के सभी कांटे उसने अपने पांव तले बिछा लिए थे और इस सारे जप-तप का फल वह उसे ही भेजती रही। वह उनका कौन था ?

उसने उसे कभी देखा तक नहीं, उसने कभी उसके साथ बात तक नहीं की। इन्हीं विचारों में उसे ऐसा लगा जैसे धरती दो टूक हो

गई हो।

उसके साथ धरती का सम्बन्ध तो था ही नहीं, वह तो कभी का स्वर्गलोक में था, और उसके नाम पर जीने वाली अभी मर्त्यलोक में थी।

उसके दिल में बल पड़ने लगे, जैसे उसकी अंतड़ियों में मोटी-मोटी गांठें पड़ गई हों।

उसे खयाल आया, कहते हैं आदम ने गेहूँ का दाना मुंह को लगा लिया था तो मालिक ने उसे अपने बाग में से बाहर निकाल दिया था। अब एक सप्ताह भर (नवरात्रों में) हव्वा की बेटियां ये औरतें गेहूँ नहीं खा सकती थीं, शायद उस कर्म का बदला चुका रही हों। उसने सोचा मैंने तो उम्र भर कोई वर्जित फल मुंह को नहीं लगाया, फिर मुझे जिन्दगी के बाग से क्यों बाहर कर दिया गया। सारे जीवन के जप-तप से उसे घृणा हो गई, बदले का भाव भभूका-सा उसके अन्तर से उठा, उसके सिर में चक्कर-सा आया, उसका हाथ कांपा, सातवें नवरात्र के लिए आलू डालकर साना हुआ सिंघाड़े का आटा उसने फर्श पर दे मारा और गेहूं के दानों की मुट्ठी भरकर अपने मुंह में ठूंस ली।

काफी दिन चढ़े जब सबने देखा तब वह रसोईघर के फर्श पर बेसुध पड़ी थी।

एक पत्र

एक पत्र

मेरे भोले बालम !

परसों प्रातः कालीन सूर्य हम दोनों को पति-पत्नि के रूप में देखेगा। माता-पिता यही चाहते हैं, मैं भी यही चाहती हूँ, तुम भी यही चाहते हो।

घर में चीजें इकट्ठी की जा रही हैं—बारात के स्वागत के लिए, विवाह की वेदी के लिए, तथा विदा के समान के लिए। मुझे ख्याल आया, जिस तरह कोई शिकारी छाँट-छाँटकर अपना सामान इकट्ठा करता है, ठीक वैसे ही, और फिर मुझे ख्याल आया कि विवाह वेदी की चीजें भी शिकार का ही सामान हैं, इससे भी शिकार किया जाएगा। सब से पहले मैं स्वयं शिकार बनूंगी, तुम्हारी दौलत का शिकार, क्यों कि मैं स्वयं शिकार बनना चाहती हूँ, यह तीर मुझे प्यारा लगता है, सोने का है इसलिए। तुम शिकार बनोगे, मेरे रूप के, मेरे गुणों के, यह भी सोने जैसे प्यारे तीर हैं, और दुनिया शिकार बनेगी, एक गलत फहमी का क्योंकि परसों का प्रातः कालीन सूर्य हमें पति-पत्नि के रूप में देखेगा।

किसी स्थान पर लिखा हुआ था और मैं भी मानती हूँ कि यदि नारी अपनी वास्तविकता स्पष्ट शब्दों में बतादे तो या तो वह किसी पर्वत-कंदरा में महात्मा हो जाए या फिर नीचे की गारों में अपराधी।

मुझे डायरी लिखने की आदत है। हालांकि मैं यह जानती हूँ कि मेरी डायरी कोई भी नहीं पढ़ पाएगा फिर भी, भावावेश में भी, मै

उसमें वास्तविकता को नहीं, लिख सकती। और मेरा विचार है कि कोई औरत ऐसा कर भी नहीं सकती। इस पर भी मेरे भोले बालम ! मैं कुछ लिख रही हूँ, साथ ही यह भी बता देना चाहती हूँ कि यदि मैं यह सब कुछ न भी लिखूँ तो भी जो कुछ मैं चाहती हूँ उसमें कोई कमी नहीं आ सकती।

मैं चाहती हूँ एक धनी पति और समाज में प्रसिद्धि, जिसके लिए मैं जवानी, रूप और प्यार तीनों चीजों का बलिदान कर सकती हूँ। तुम्हारे साथ विवाह करने में मेरी इच्छा की चीज मुझे मिल जाएगी। तुम धनी हो, बहुत बड़े धनी हो, नगर की बड़ी से बड़ी पार्टी तुम्हारे बिना सूनी सी लगती है, इसलिये मैं तुम्हारे बिना शून्या हूँ। कुछ महीने पूर्व मैं जान बूझ कर उन पार्टियों के निमंत्रण स्वीकार कर लेती थी जहाँ तुम्हें जाना होता था।

तुम्हारे धन का बाण मुझे चुभ चुका था, बस यही देरी थी कि मेरे रूप और गुण के तीर भी वार करते। मुझे इन पर भरोसा था, और यह बात हुई भी। मेरे पिता के सम्मुख तुमने मेरे विवाह की प्रार्थना की, माता-पिता ने मेरी इच्छा जाननी चाही। वह मेरी ही तो बनाई हुई बात थी। इसलिए अब सामान इकट्ठा किया जा रहा है शिकार का। तुम्हारे शिकार का, मेरे शिकार का, और समाज के शिकार का, जो हमें आदर्श पति-पत्नि समझेगा।

मुझे तुम्हारी दौलत तो प्यारी है ही, तुम्हारी आदतें भी प्रिय हैं; धीरे-धीरे बोलना, मंद-मंद मुसकाना, नमी से हाथ दबाना, आगे बढ़के पहले द्वार खोलना, आदर सहित थोड़ा सा झुकना, और अपने वस्त्रों की ओर विशेष ध्यान देना। दूसरे के बालों की, साड़ी की, बातचीत की प्रसंसा करना, समझदार माली से कमरे सजवाना, कोठी में हर चीज का नया डिजाइन रखना। परन्तु मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। यदि यह बात मैं मुंह से न कहूं तो मैं जीवन भर अपने अखंड प्रेम का

विश्वास दिला सकती हूँ, हर स्त्री जन्म से ही अभिनय करना जानती है।

कितने वर्षों की बात है, जब मैं प्यार की इच्छुक थी। तब मैं प्रेम को, आध्यात्मिक प्रेम को—चांदी के वर्क से चमकते हुए रंग का-नाम देती थी। वर्क की तरह चमकता हुआ प्यार, जो हलकी सी फूंक से भी उड़ सकता है और फट सकता है। और जब मैंने प्रथम बार किसी की आँखों में देखा था तो मेरे शरीर में एक सूक्ष्म-सी लहर दौड़ गई थी। मैंने इसे आत्मा से आत्मा का मिलन समझा था और इसे आंतरिक मस्ती का नाम दिया था। मैं मान गई थी कि मानव की आंखों से ईश्वरीय ज्योति झलक सकती है।

पुरुष औरत को गुड़िया समझकर खेलता है, वह हाथ आगे बढ़ाता है, नारी हृदय आगे करती है, परन्तु पुरुष को पता नहीं कि यदि इसके बदले कभी नारी खेलने पर उतर आए, तब पुरुष जब हाथ आगे करता है, नारी अपने पांव से उन हाथों को खिलोनों की तरह रौंद सकती है। नारी यदि जरा भी समझदार हो तो आदमी का खेल उसकी नजरों में खेल से अधिक महत्व नहीं रखता। पुरुष कितना ही समझदार हो नारी का खेल उसे सदा वास्तविक ही दिखाई देता है। हाँ, उसने मेरे साथ खेल किया था। मैं अपनी हार मानती हूँ, मैं उस समय बड़ी अबोध थी, मैं उसके हाथों में खेल गई थी। अब उसका बदला यही है कि मैं भी खेलूं, जी भर कर खेलूं, पुरुष के हृदय के साथ—उसके भावों के साथ—उसकी दौलत के साथ। खिलौने खरीदूँ और तोड़दूँ। फिर खरीदूँ, और फिर तोड़ दूं।

उसने मेरे साथ विवाह नहीं किया था क्योंकि मैं एक धनी बाप की बेटी नहीं थी। देर हो गई, किसी पिता ने अपनी पुत्री के लिए उसे दस हजार रुपये में ले लिया है।

उसके बाद मैंने अपने पर परिश्रम किया। मेरे पास रूप था, उसमें कला पैदा की। कई हाथ मेरी ओर ललचाए। मुझे न प्यार आया, न

घृणा। क्योंकि वे सारे हाथ मुझे रबड़ के, मोम के, मिट्टी के खिलौने प्रतीत हुए। पत्थर भी पत्थर है और स्वर्ण भी पत्थर। फिर अपना सिर फोड़ना ही है तो क्यों न स्वर्ण की दीवार से ही फोड़ा जाए। कितनी सुन्दर दीवार है।

पिछले वृहस्पति की बात है, जब हम दोनों चाय पर मिले थे तो मैंने तुम से एक बात पूछी थी; एक लड़की बड़ी सुन्दर है, उससे कोई विवाह करना चाहता था, कुछ दिन हुए लड़के को पता चल गया कि लड़की भले ही कुमारी है परन्तु उसका प्रेम अछता नहीं। लड़के को अब क्या करना चाहिए। वैसे लड़की उसे बड़ी पसन्द है। तब तुमने अपनी स्वभाविक मंद सी मुस्कान से कहा था—"यदि उसे लड़की उतनी ही पसंद है जितनी तू मुझे तो फिर वह वेश्या ही क्यों न रह चुकी हो, उससे विवाह कर ले" याद है ना फिर मैं हँस दी थी, और मेरे भावी धनी पति ! तू भी मेरे साथ खेल रहा है, मैं भी तेरे साथ खेल रही हूँ। रूप और प्यार यदि इकट्ठे नहीं हुए, न सही। रूप और धन तो इकट्ठे हो जायेंगे। सो ठीक है, अब मैं चाहती भी यही हूँ।

मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ, तुम्हारा घर फूलों की सुगंध से भरा होगा। मैं कोयल की तरह उसमें संगति भर दूँगी। रूप बखेर दूँगी, हास्य लुटा दूँगी। तुम्हारे मित्र तुम से ईर्षा करेंगे। तुम्हारे अतिथि मेरे हाथों से भोजन माँग-माँग कर खायेंगे। मैं तुम्हारे लिये एक संतोष-प्रद गृहस्थी बनाऊँगी। इस तरह तुम्हारी पत्नि बनूँगी, तुम्हारे बच्चों की मां। भले ही मुझे पत्नी और माँ बनने से अब घृणा है। दुनिया मुझे एक आदर्श पत्नी और समझदार मां समझेगी और रात को जब लोग सो रहे होंगे मैं उन पर हसूँगी—उसी तरह जिस तरह रात को तारे दुनियावालों के गुनाहों पर हँसते हैं।

बस अन्तिम बात, तुम सोचोगे जब मैं आदमी के दिल और दौलत से खेलना ही चाहती हूँ तो विवाह से एक दिन पूर्व अपने अतीत को

कर्त्तव्य या फिर पश्चात्ताप समझकर स्वीकार करना जरूरी क्यों समझती रहूँ ?

एक बार फिर कहती हूँ—मेरे भोले बालम ! आदमी औरत को कभी नहीं समझ सकता ।

यह सब कुछ बताना मैं कोई कर्त्तव्य नहीं समझ रही हूँ परन्तु हथेली पर दीपक रख कर चोरी करने में भी एक रस है—अन्धकार की चादर में तो गुनाह सारी दुनिया करती है ।

तुम्हारी अपनी—कुसुम

कमीन

कमीन

वीरा का पिता कर्मचंद के खेत में मजदूरी करता था। बाप की मृत्यु के समय उसकी इकलौती बच्ची वीरा की अवस्था लगभग दस महीने थी। भरी जवानी में उसकी मृत्यु हो गई थी, और पूरे गाँव के लोगों का दिल वीरा की विधवा युवती माँ क दुख से द्रवित हो गया था, अक्सर लोग उसकी मदद कर देते थे।

कुछ लोगों के विचारानुसार वीरा का पिता जुलाहा था और कुछ लोग उसे और भी कमीन जाति का कहते थे। एक बार जब गाँव में प्लेग का प्रकोप हुआ था, तो गाँव-के-गाँव साफ हो गये थे। इसी प्रकोप का शिकार वीरा के दादी-दादा और दूसरे संबंधी हो गये थे, बस, वंश की एक मात्र निशानी वीरा का असहाय पिता बच गया था। और तब से वह मृत्यु-पर्यन्त कर्मचंद के खेतों में मजदूरी करता रहा। गाँव की स्त्रियाँ वीरा की माँ से रसोई आदि काम तो नहीं कराती थीं, परंतु घर के ऊपरी कामों की जिनमें छत का कोई भय नहीं उसे कमी नहीं थी। अधिकतर तो वह कर्मचंद के घर का ही काम करती थी। कर्मचंद की पत्नी कंजूस नहीं थी, इसलिए अक्सर वीरा को भी पीने को दूध मिल ही जाता था और उसकी माँ को भी कुछ विशेष कठिनाई नहीं होती थी।

कर्मचंद ने हजारों मनौतिओं के बाद अपनी अन्तिम अवस्था में एक पुत्र-रत्न पाया था और उसने उसका नाम रखा था रूपचंद। रूपचंद की माँ अपने बच्चे को प्यार करते अघाती न थी और अक्सर कहा करती —यही मेरा पहला और आखिरी बच्चा है।

वीरा अवस्था में रूप से सात-आठ वर्ष छोटी थी। खेल में इन दोनों का कोई जोड़ नहीं था, परंतु अन्य साथी के अभाव में वीरा रूप के लिए एक प्रिय खिलौना बन गयी थी। रोटी खाने से पहले रूप वीरा को अपने पास बुला लेता और उसे भी अपने षटरस भोजन में से एक हिस्सा दे देता। रात को जब माँ उसे मलाईवाला दूध पीने को कहती, तो वह बाहर से इनकार करता। तब माँ वीरा को बुलाती और उसे भी अलग एक कटोरी में दूध देकर कहती—देखें पहले कौन पीता है ?...मैंने आँखें बंद कर ली हैं...मैं जानती हूँ, मेरा रूप पहले पीयेगा.. —और जब वह आँखें खोलती, तो देखती दोनों बच्चे दूध पी चुके हैं।

पास-पड़ौस की औरतें कई बार उसे कहतीं—छिः-छिः ! तुम इस कमीन लड़की को क्यों इतना सिर चढ़ाती हो ? जो भी तुम्हारा बेटा खाता है, पास ही बैठकर वह भी खाती है ? लोग अपने बेटे को चोरी-चोरी छिपाकर खिलाते हैं कि किसी की नजर न लग जाय और तुम...

—तो क्या हुआ, बहिन ? मैं इस लायक कहाँ थी ? जाने किसके पुण्यों के प्रताप से मुझे रूप मिला है। मैं कैसे किसी बच्चे को बिलखते देख सकती हूँ ?—अक्सर वह यही उत्तर देती।

वीरा अब नौ वर्ष की होकर कामों में अपनी माँ का हाथ बटाने लगी थी। जब उसकी माँ बर्तन मलती, तो वह अपने छोटे-छोटे हाथों से साफ पानी से धोती और उठाकर रखती। माँ कपड़े धोती, तो वह सूखे कपड़ों को बटोरकर तह लगाकर रखती।

कर्मचंद के पास जमीन काफी थी। गाँव में सबसे शानदार उसकी पक्की हवेली थी। सोलह-सत्रह के होते ही रूप के लिए रिश्ते-पर-रिश्ते आने लगे।

—मैं ज्यादा इन्तजार नहीं करूँगी। जाने किस के पुण्य से इस योग्य हुई हूँ। लोग कहेंगे, इसे घमण्ड हो गया है। मैं लोगों को कुछ कहने का कोई मौका नहीं देना चाहती।—माँ कहती।

और अंत में कुछ ही दिनों बाद देख-भालकर पास के गाँव ही की एक सुन्दर, स्वस्थ और अमीर घर की लड़की से रूप की सगाई हो गयी।

परंतु विधि की विडम्बना ? इसके कुछ ही दिन बाद रूप की माँ दो दिन के साधारण ज्वर से अपनी आकांक्षाओं को हृदय में दबाये इस लोक से चली गयी। कर्मचंद की आँखों की रोशनी पहाड़-जैसे दुःख के कारण रो-रोकर समाप्त हो गयी।

वीरा की माँ ने ठीक एक सुघड़ गृहिणी की भाँति घर को संभाल लिया। कमीन होने के कारण वह रसोई का काम नहीं कर सकती थी, अतः इसके लिए एक महराजिन रख ली गयी। कर्मचंद की उजड़ती गृहस्थी फिर बस गयी और सब काम पूर्ववत् चलने लगा।

—वीरा बेटी, मेरा डंडा तो पकड़ाना...आज क्या तरकारी बनायी है ? मैं आज दूध नहीं पीऊँगा।—भले ही यह काम महराजिन के थे, परंतु कर्मचंद हर बात वीरा से ही पूछते।

वीरा कर्मचंद का हाथ पकड़ कर उन्हें बाहर बिठाती, बिस्तर ठीक करती और जो वह कहते, करती।

सब लोग कहते, कर्मचंद खद भी कहते—अब तो रूप का ब्याह कर ही देना चाहिए, ताकि बहू आकर घर संभाले।

और इसी लिए जल्दी ही रूप के ब्याह की तारीख निश्चित हो गयी।

कामों की अधिकता स्वाभाविक थी। वीरा की माँ पल-पल पर रूप की माँ को याद करती और उसकी आँखों में आँसू आ जाते। वीरा भी ब्याह के कामों में बड़े चाव से हाथ बटा रही थी।

वीरा और उसकी माँ भी बारात के साथ गयी। वीरा दुलहिन के घर गयी और उसने अभिन्न सहेली की तरह दुलहिन (शिब्बो) के हाथों में मेंहदी रचायी। और जब शिब्बो को हल्दी चढाई गयी, तो वीरा बराबर गाती रही, वीरा ने ही उसके लम्बे, काले बालों को लाल रंग

की चोटी डाल कर गूंथा ।

शिब्बो का हाथ कुछ भारी था । हाथी-दाँत का लाल चूड़ा उसके हाथ पर आसानी से नहीं चढ़ रहा था, यह देखकर वीरा को ऐसा कष्ट हो रहा था, जैसे शिब्बो को होने वाली पीड़ा वह स्वयं ही अनुभव कर रही हो, वह शिब्बो का बाँया हाथ अपने हाथों से सहलाने लगी ।

शिब्बो के एक हाथ में लोहे का कड़ा पहिनाकर उसके साथ धागे में गड़ी और कौड़ियाँ गूँथकर बांधी गयी थीं । वीरा बार-बार उसे हाथ से छू रही थी ।

—यह लो, मैं अपना चूड़ेवाला हाथ तुम्हारे सिर पर मारती हूँ, तुम्हारी भी शादी जल्दी ही हो जायेगी ।—जहाँ शिब्बो ने अपनी अन्य कुमारी सहेलियों के सिर पर अपना 'कलीरों' और चूड़ेवाला हाथ मारा, वहाँ उसने वीरा के सिर पर भी दो बार मारा ।

वीरा बहुत अधिक प्रसन्न थी । जब रूप और शिब्बो की भांवरें पड़ने लगीं, तो प्रसन्नता के आधिक्य से उसकी आँखों में खुशी के आँसू भर आये ।

डोली का समय आया, शिब्बो के मायके की औरतें रोने लगीं, अब वह ससुराल की दौलत थी और मायके वालों के लिए मेहमान । सब नयी दुलहिन शिब्बो के पास बैठना चाहती थीं, परन्तु वीरा समझ रही थी कि शिब्बो पर अब इन सबकी अपेक्षा उसका अधिक अधिकार है, इसलिए वह शिब्बो के पास ही बराबर डटी रही ।

शिब्बो की सहेलियाँ जाने क्या-क्या उसके कानों में कहना चाहती थीं, किन्तु वीरा के कारण उन्हें एकान्त मिल ही नहीं रहा था । आखिर एक लड़की ने कह ही तो दिया—देखो न, यह कमीन लड़की शिब्बो के पीछे हाथ धोकर पड़ी है !

वीरा का मुँह उतर गया, वह वहाँ से बाहर चली गयी ।

× × ×

शिब्बो ने ससुराल में आकर थोड़े दिन भी आराम नहीं किया। नयी दुलहिनों की तरह वह मेहमान नहीं बनी रही। पन्द्रह दिन के बाद ही वह घर की मालकिन के महत्वपूर्ण पद पर आसीन हो गयी। उसके बाद वह मायके भी कभी अधिक दिन नहीं रह पायी। ऊपर का सब काम वीरा और वीरा की माँ ही करती थीं, परन्तु उन कामों की भी कमी नहीं थी जिन्हें वह कमीन माँ-बेटी नहीं कर सकती थीं। सारा-सारा दिन काम में लगी रहती। किसी को कोई शिकायत का अवसर नहीं देती।

कर्मचन्द बहू पर आशीर्वादों की झड़ी लगाये रहते, पर साल-पर-साल बीतते जा रहे थे और शिब्बो को जैसे उनके आशीर्वाद फल ही न रहे थे। लोग कहते---जहाँ ज़रूरत है, वहाँ ईश्वर नहीं देता!

सामर्थ्यानुसार वीरा हर काम में शिब्बो की सहायता करती और उसकी माँ भी शिब्बो को सब प्रकार से सुख पहुँचाने की कोशिश करती। जवानी जैसे वीरा पर फटी पड़ने लगी थी। उसका शरीर इतनी तेज़ी से बढ़ रहा था कि अक्सर उसकी माँ शिब्बो से कहती---पास तो दमड़ी भी नहीं है और वीरा छत को हाथ लगा रही है!

---तुम क्यों इसके लिए चिन्तित हो, वीरा की माँ? जहाँ उसका भाग्य होगा, एक दिन चली जायेगी। शिब्बो हमेशा यही उत्तर दिया करती।

अब रूप और शिब्बो की शादी का छठा वर्ष चल रहा था। कर्मचन्द के आशीर्वाद निष्फल जा रहे थे। वह एक लम्बी साँस लेकर कहते---मेरे भाग्य में शायद यही बदा है।---और आखिर एक दिन उनकी मौत आ पहुँची, वह पोता देखने की इच्छा के साथ ही हमेशा के लिए सो गये।

लोगों के मुँह बन्द नहीं किये जा सकते। तरह-तरह की बातें होने लगीं। कोई कहता---रूपचन्द की ही अब अकेली जान रह गयी।

---कर्मचन्द का---कोई कहता---नामनिशान मिट जायेगा।---कोई कहता---इतने खेत हैं, इतना रुपया-पैसा है, इन सबका क्या होगा ?...

अबभी शिब्बो पहले ही की तरह घर को साफ रखदी, हर चीज को चाँदी की तरह चमकाती रहती, परन्तु उसका अपना ही मुँह रोज-रोज मैला होता जा रहा था।

रूपचन्द ने कभी उसे एक शब्द भी नहीं कहा था, परन्तु वह सोचती, आखिर कब तक वह मेरा लिहाज करेंगे ?

आखिर एक दिन शिब्बो ने अपने हृदय पर पत्थर रखकर अपने पति से दूसरे विवाह के लिए कहा। रूपचन्द इस प्रसंग को टालना चाहता था, परन्तु शिब्बो बार-बार यही प्रसंग उठा बैठती।

—तुम मेरी थाह ले रही हो, शिब्बो ?

—नहीं, नहीं, ऐसा मत कहिए ! मुझे किसी की भी कसम दिलवा लीजिए, मैं दिल से कह रही हूँ कि...

—परन्तु मुझे तो बच्चे की कोई जरूरत नहीं है।

—सारी उम्र ?

—हां मृत्युपर्यन्त,—और रूपचन्द बाहर चला गया।

शिब्बो उस दिन प्रसन्न थी, अत्यधिक प्रसन्न ! वह वस्तुतः अपने पति की थाह ले रही थी। उसका ऐसा इन्कार सुनकर उसे बड़ी शान्ति प्राप्त हुई।

बीरा बड़ी स्वस्थ युवती हो गयी थी। वह अपनी अवस्था से कुछ अधिक बड़ी लगती थी। रंग उसका गेंहुआँ आ था। उसमें एक ऐसा आकर्षण आ गया था, जिसकी अवहेलना कदाचित् ही कोई कर सकता था। उसकी माँ अक्सर शिब्बो से उसके विवाह की बातें किया करती।

एक रात शिब्बो ने रूपचन्द से बीरा की शादी का जिक्र किया कि जल्दी ही कहीं उसके वर की खोज करनी चाहिए। उसके बाद वह बीरा को जो चीजें देना चाहती थी, उनकी बातें करती रही। रात

काफी बीत चुकी थी, परन्तु रूपचन्द जाग रहा था।

—शिब्बो !—सहसा उसने पुकारा।

—कहिए।

—एक बार तुमने...—सहसा वह चुप हो गया। फिर जरा देर बाद बोला—जात-पाँत का ख्याल आजकल कौन करता है। अगर वीरा...—अचानक ही फिर चुप हो गया।

शिब्बो कुछ समझी नहीं।

—वीरा इतने दिनों से हमारी सेवा कर रही है, और हमेशा तुम्हारी सेवा करेगी, मैं जानता हूँ।

अब शिब्बो समझ गयी और वह पहली बार अविश्वास से अपने पति को देखने लगी।

—वीरा...—शिब्बो ने इतना ही कहा और फिर उसे अपने चूड़े से खेलती छोटी वीरा का स्मरण हो आया, और फिर उसे याद आया उसने अपना चूड़ेवाला हाथ दो बार वीरा के सिर पर मारा था। सहसा उसका दिल घबरा उठा, तभी क्यों न वीरा को ही वह चूड़ा पहना दिया गया...

तब से जाने कैसा एक पत्थर शिब्बो ने अपने दिल पर रख लिया। वह सोचती, पुरुष हर प्रकार की मनमानी करने को स्वतन्त्र है, स्त्री उसे रोक नहीं सकती। मैं अगर स्वेच्छा से मान जाऊँगी, तो यह मेरे पक्ष में अच्छा ही रहेगा। न भी मानूँगी तो भी वीरा नहीं तो कोई दूसरी मेरे स्थान पर आ जायगी। कोई भी बड़ी प्रसन्नता से रूप को अपना दामाद बनाने को तैयार हो जायगा।...फिर क्यों न वीरा ही...

और एक दिन उसने वीरा की माँ से वीरा को मांग ही लिया।

—ओफ ! यह क्या कहती हो बहूरानी ? जैसी बेटी वीरा, वैसी तुम !—वह रोकर कह उठी।

परन्तु शिब्बो ने हठ ठान लिया—यही उसके भाग्य में था, वीरा की माँ।

और दूसरे दिन लोगों ने सुना, उस घर की कमीन नौकरानी वीरा अब उस घर की बहू बनेगी ! छिः-छिः !

रूपचन्द के मुंह पर तो किसी ने कुछ न कहा, एक बुजुर्ग ने सिर्फ यही कहा—रूपचन्द, अगर तुम बिरादरी की किसी भी लड़की के लिए कहते, तो तुम्हें निराश न होना पड़ता। तुमने एक कमीन लड़की से शादी...

—कोई बात नहीं, चाचा आजकल जाति कौन देखता है !—उसने हँसकर उत्तर दिया।

लोगों ने खुलकर तो कुछ नहीं कहा, परन्तु धीरे-धीरे लगभग सभी ने उसके घर का खाना-पीना छोड़ दिया।

जब-जब शिब्बो का मन घर से विमुख होता, उसे घर में और भी अधिक फँसाये रखने का प्रयत्न वीरा करती। घर का काम-धाम तो सब वही करती, लेकिन रुपये-पैसे, गहने-जेवर का सब उत्तरदायित्व वह उसी पर डाले रखती, उसने कभी स्वयं एक पैसा अपने हाथ से नहीं छुआ।

× × ×

परन्तु अभी उसका लाल हाथी दांत का चूड़ा मैला भी न होने पाया था कि अकस्मात् पंजाब के बुरे दिन आ गये। लोग अपने पड़ोसियों के घर छुरियों पर सान चढ़ाते देखते। लोग अपने घरों में छोटे-बड़े हथियार जमा करने लगे। कितने लोग लाल मिर्चे पीसकर अपने घर जमा करने लगे। लड़कों ने आग बुझाने के लिए बोरे-के-बोरे रेत भरकर अपने घर में रख लिये। स्त्रियों ने उस दुर्भाग्य की कल्पना करके कि आततायी उनका सतीत्व हरण करने पर उतारू होंगे, अफीम खाकर आत्महत्या करने की तैयारी में हर समय अपने पास अफीम रखना शुरू कर दिया।

आग भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी। दो एक दिन के बाद ही धुआँ दिखाई देने लगा। और फिर आग के शोले भड़क उठे। एक गाँव का दूसरे गाँव से सम्बन्ध समाप्त हो गया। जहां जो था, वहीं रह गया,

किसी अन्य की सुधि लेने की किसी को सुधि न थी।

वीरा की माँ वीरा की शादी के आठ दिन बाद ही अपने किसी दूर के रिश्ते के भाई के यहाँ चली गयी थी, बेटी के घर रहना उसे अच्छा नहीं लगा। रूपचन्द की बड़ी हवेली में सिर्फ शिब्बो और वीरा ही रह गयी थीं। हो-हल्ला शुरू हुआ, तो रूपचन्द का एक रिश्ते का भाई और एक भतीजा सुरक्षा के ख्याल से, पुरानी बातें भूलकर, अपना घर छोड़-कर रूपचन्द की मजबूत हवेली में आकर रहने लगे। भाई ने अपने तीनों बच्चों को पहले ही लुधियाना अपनी बहन के पास पहुँचा दिया था। पति-पत्नी यहीं रह गये थे। भतीजे की शादी वीरा की शादी के एक ही महीना पहले हुई थी। उसकी पत्नि के हाथ का चूड़ा भी अभी चमक ही रहा था। दुर्भाग्य ने यद्यपि तीनों परिवारों को एक साथ रहने को विवश कर दिया था, फिर भी इन परिवारों की झूठी शान ने उन्हें सहयोग के सूत्र में न बँधने दिया, खाना अब भी सब का अलग-अलग बनता था। अपनी ओर से यों भी वीरा बहुत कम रसोई के काम में हाथ डालती थी। वीरा से किसी को कोई शिकायत नहीं थी, थी तो बस यही कि काश, वह कमीन न होती!

क़यामत का दिन इसके बाद शायद कोई नहीं आना था। रूपचन्द का भाई बाहर खेतों में ही मार डाला गया और खुद रूपचन्द रात को हवेली की रखवाली करता हुआ धर्म की भेंट चढ़ गया। सारी रात हवेली के बन्द दरवाजें टूटते रहे और भीतर से औरतों के रोने की आवाजें तेज होती गयीं। वीरा ने अपना नया चूड़ा, अपना सोहाग-चिन्ह तोड़ डाला, अपने बाल नोच डाले और खुद ही अपने हाथों को काट खाया। विधि का अद्‌भुत खेल! कमीन कुल में जन्म लेकर भी वह इतने उच्च कुल की वधू बनी और फिर भाग्य ने उसके साथ ऐसा भयं-कर खेल खेला। उसका सुख-सोहाग उससे छिन गया!

घर में अब एक ही पुरुष, रूपचन्द का भतीजा, रह गया। वह बन्दूक

लिये खिड़की में बैठा था और सामर्थ्यानुसार किसी को भी हवेली तक पहुँचने नहीं देता था। परन्तु अभी सुबह भी न हुई थी कि हवेली के मजबूत दरबाजों पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी गयी।

हवेली के पिड़वाड़े ऊँची और पत्थर की तरह मजबूत दीवार के उस पार कई नीची छतें थी। रस्सियों की सहायता से नज़ीर उनमें से एक पर पहुँच गया और फिर एक-दूसरी को लांधता हवेली की छत पर आ गया।

औरतों ने सुन रखा था कि आग लगने पर सबसे पहले छत गिरती है, फिर दीवारें और सीढ़ियां सबके बाद। शिब्बो, वीरा तथा वह दोनों औरतें कांपती हुई हवेली की सबसे ऊपरी मंजिल की सीढ़ियों में बैठी थीं। बाहर धुएँ का रेला था। कभी-कभी लोगों का शोर-गुल सुनायी दे जाता था। वीरा ने एक बार खुली छत की ओर मुँह निकालकर देखना चाहा, परन्तु धुएँ के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखायी न पड़ा। जैसे-जैसे आग तेज़ होती जाती थी, लोगों की आवाज़ें दूर होती जाती थीं। तभी किसी का हाथ वीरा के कन्धे पर पड़ा, आवाज़ आयी—वीरा!

वीरा काँप उठी, नज़ीर ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर बड़ी आजिजी से फिर कहा—वीरा, जो कुछ होना था, हो गया, अब ऐसी मौत मरना ठीक नहीं है।

परन्तु वीरा जैसे होश में नहीं थी, उसने अपने पड़ोसी नज़ीर को भी नहीं पहचाना और न उसकी बात ही समझी।

—खुद गवाह है, वीरा! पूरे साल-भर से मैं एक दिन भी नींद भर सोया नहीं हूँ, हर पल मैं तेरे ही सपने लेता रहा हूँ...

—तुम कौन हो?—जैसे सहसा उस प्रस्तर-प्रतिमा में प्राण-संचार हो गया हो।

—तुम्हें क्या हो गया है, वीरा, जो मुझे भी नहीं पहचानती? मैं

तुम्हारा पड़ोसी नज़ीर हूँ, वीरा, नजीर अहमद। जब भी तुम खेतों पर जाती थी, मैं कुएँ पर बैठा टप्पा गाता था। अपनी इस जवानी पर रहम खाओ, वीरा ! अगर तुम जिन्दा किसी दूसरे के हाथों पड़ गयीं, तो तुम्हारी इज्ज़त नहीं बचेगी। मैं सारी उम्र तुम्हारा गुलाम बना रहूँगा। इस पिछले रास्ते से मैं तुम्हें फूलों की तरह उठा ले जाऊँगा। जल्दी करो, वीरा, वर्ना अभी पूरी हवेली जलकर राख हो जायगी !

आग की लपटों ने वीरा के मुँह को रौशन कर दिया और उसने नजीर की आँखों में गहरे झाँकते हुए कहा—एक बात मानोगे ?

—मैं तुम्हारी हर बात मानूँगा, वीरा, सारी उम्र मानता रहूँगा !

—सारी उम्र नहीं, नज़ीर, अभी, सिर्फ एक बात।...तुम शिब्बो और इन दोनों औरतों जो यहाँ से बखैरियत बाहर निकाल दो। इन्हें बचाओ, नज़ीर, किसी भी तरह ! मेरे वो इनकी रक्षा के लिए ही कुर-बान हो गये। उन्होंने इन लोगों को आश्रय दिया था। इनकी बेहुरमती हुई, तो उनकी रूह ताक़यामत तड़पती रहेगी। नज़ीर...

—यह कैसे हो सकता है, वीरा ? वो लोग तो तुम औरतों को जिन्दा चाहते थे। कोई दूसरा उपाय न देखकर, आखिर उन्होंने आग लगायी...

—यह सब मैं कुछ नहीं जानती। मैं सारी जिन्दगी तुम्हारी खिद-मत करूँगी।.....नहीं तो इसी आग में जलकर उनके पास पहुँच जाऊँगी।

—अच्छा, मैं कोशिश करता हूँ।

—सच कह रहे हो ?

—खुदा गवाह है।

—मुझे विश्वास है, नहीं तो आज इस आग से कोई भी मुझे बचा न पाता, तुम भी नहीं, नज़ीर...

× × ×

आग की लपटें गहरी लाल हो गयी थीं। लोगों की आवाजें बन्द

हो गयी थीं। एक-एक औरत को नजीर ने अपनी मजबूत बाहों में उठा-उठाकर साथ की नीची छत पर उतारा। वीरा धुएँ को चीरकर नीचे उतरी और हाथ में खाली बन्दूक पकड़े रूपचन्द के भतीजे की बाँह पकड़कर, उसे ऊपर ले आयी। वह जैसे अर्द्धमृत-सा चुपचाप यन्त्र-चालित-सा वीरा के पीछे-पीछे ऊपर आया और पहले साथवाली छत पर, फिर दूसरी नीची और अन्त में सभी नजीर के घर जा पहुँचे।

आग की लपटें आकाश को छू रही थीं, परन्तु लोग अब आग बुझा रहे थे, क्योंकि इससे पड़ोसी घरों को खतरा पहुँच रहा था।

दो दिनों के बाद जब लोगों ने राख में ढूँढ़ा तो उन्हें न तो किसी मानव-शरीर की हड्डियाँ ही मिलीं और न ही पिघला हुआ सोना-चाँदी। लोगों ने समझा शायद हड्डियाँ भी जलकर राख हो गयी थीं।

× × ×

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। अन्धकार में दूर गन्ने के एक ऊँचे खेत में तीन घोड़ों के बीचेवाले घोड़े पर बैठी शिब्बो के घोड़े के पास खड़ी वीरा ने उसकी कमर में गहनों की पोटली बाँधी और शिब्बो के हाथों को चूम कर और फिर उसके पैरों को छूकर वह खेतों में अदृश्य हो गयी।

गाँव के लोग केवल यह जानते हैं कि रूपचन्द ने जिस कमीन लड़की से शादी की थी, उसे पता नहीं कैसे, नजीर ने हवेली में से जिन्दा निकाल लिया और अब उससे निकाह करके बाकायदा उसे अपनी बीवी बना लिया है।

कई साल पहले

कई साल पहले

"....."

और मुझे मोहब्बत हो गई...जयश्रीरागिनी से.....मैं जानता था विहागरराग कितना दर्दनाक होता है, भैरवी कितनी मधुर,.....लेकिन आह जयश्री...मध्यम छेड़ूं, पंचम बोले.....मैं बजाता कुछ और था और बजता कुछ और था; और मैं यह भी जानता था कि क्यों ?..... क्योंकि तुम्हारा नाम जयश्री के बजाय जयवन्त होता तो मुझे जयश्री-रागिनी के बजाय जयजयवन्ती ही अच्छी लगती। खैर एक-दूसरे से मिलते-जुलते नामों से, रंगों से, अंगों से कुछ हुआ ही करता है।

जमाना गुजर गया है—एक जमाना, लेकिन आज दुहराने को जी चाहता है। क्यों, जयश्री, तुम्हें याद है ? तुम्हें लिखना नहीं आता था, लेकिन तुम्हारे पास वह कुछ था.....हां, तुम सुन सकती थीं, अच्छी तरह सुन सकना अच्छा लिखने से कम नहीं होता। लिखनेवाले को अपने लिखे की पूरी कीमत वसूल हो जाती है, अगर उसे कोई अच्छी तरह सुन ले....और मैं जब भी कोई नई कहानी लिखता था, तब मेरी पहली इच्छा यही होती थी कि तुम उसे सुन लो... उसे...मेरी कहानी को, मेरी छोटी-सी कहानी को...और जब-कभी मैं कोई नई फिल्म देखा करता था, चार घण्टे का सफर, तीन-चार रुपए किराया, और सारे दिन की पढ़ाई का हर्ज करके मैं इसलिए तुम्हारे पास पहुंचा करता था कि तुम इस फिल्म की कहानी सबसे पहले मेरे मुंह से सुनो, और कभी-कभी...मैं कोई नई किताब सिर्फ इसलिए पढ़ा करता था, कि तुम्हें कोई नई चीज सुना सकूं। मैं अपने कपड़ों के

बारे में शुरू से ही बेपरवाह नहीं था, एक समय था जब मेरे कोट के कालर पर एक भी बल नहीं होता था, लेकिन इसके बाद मैं अपने कमरे में इसलिए खुद ही कोई बल-सा डाल देता था कि तुम आओगी, थोड़ा सा डांटोगी और फिर वह बल निकाल दोगी। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बल डालने का आदि हो गया, और आज आके तुम मेरा कमरा देखो तो... हर तरफ बल-ही-बल दिखाई देंगे और बल डालना अब मेरे स्वभाव में दाखिल हो गया है। मैं चाहता तो था कि जीवन को एक गम्भीर और बलशाली प्रेम दूं, हर समय बिलखते और रोनवाले प्यार को मैंने शुरू से ही कबूल नहीं किया। रो सकना मुझे अच्छा लगता था, लेकिन हंस-हंसके रो सकना...आंसुओं के साथ तो सारी दुनिया रोती है..... हां, तो मैं अपने कमरे में बल डालने लगा। इससे पहले जा वल मैं डालता था, तुम आके उसे निकाल दिया करती थी, लेकिन फिर तुमने आना छोड़ दिया ' बल बढ़ते गए और धीरे-धीरे मैं बलों का आदी हो गया। मेरा बिस्तर इकट्ठा हुआ, मेरी मेज की चादर एक ओर लटकी रहने लगी और मेरा आइना गरदो-गुबार से अट गया। परन्तु मुझे एक आशा थी.....वह यह कि चाहे तुमने मेरी कहानियों को मुझसे सुनना छोड़ा दिया है, लेकिन तुम इन्हें पढ़ना नहीं छोड़ सकतीं और यदि तुमने कुछ समय के लिए इन्हें पढ़ना भी छोड़ दिया तो कभी-न-कभी वह समय अवश्य आएगा जब तुम पुस्तक विक्रेता की दूकान पर आओगी, दूकान-दार की ओर देखोगी, शायद थोड़ी झिझक भी महसूस करोगी, लेकिन फिर नीची निगाह करके धीरे से कह ही दोगी "आपको तकलीफ तो होगी लेकिन मुझे पुरानी पत्रिकाओं के वे तमाम परचे निकलवा दें जिनमें नीलकन्त की कोई चीज छपी हो"...धीरे-धीरे मेरा विचार उसी प्रकार पक्का हो गया, जिस प्रकार हवा में मंडरानेवाले बादल एक तस-वीर की सूरत बन जाते है। पहले मैं यह सोचा करता था—आज शाम

होगी, पुस्तक विक्रेता जब अपनी दूकान बन्द करके घर को जाता हुआ इधर मेरी बैठक के आगे से गुजरेगा, मैं खिड़की में खड़ा हूंगा, वह ऊपर निगाह करेगा, फिर वह हाथ हिलाएगा, मैं भी हिला दूंगा, पहले तो वह हर रोज इतना करके ही गुजर जाया करता था, लेकिन आज रुक जाएगा जिस तरह वह कभी-कभी रुक जाया करता है और मैं समझूंगा कि शायद मेरे साथ पुस्तकों के सम्बन्ध में उसे कोई बात करनी है जैसा कि वह कभी-कभी कहा करता है। मैं उसे ऊपर बुला लूंगा। वह बैठ जाएगा और पूछेगा—"कोई नई चीज लिखी है अपने ?" मैं थोड़ा-सा हंसके जवाब दूंगा—"आपके लिए ये चीजें नई होती हैं और हमारे लिए आज से कई साल पहले....." वह भी हंस देगा और मैं भी, हम एक-दूसरे के मित्र जो ठहरे और फिर वह पहले की तरह अपनी सरसरी आवाज में कहेगा..."आज हमारी दूकान पर एक लड़की आई थी," वह मेरी ओर देखेगा और साथ ही कहेगा—"कहती थी आपको तकलीफ तो होगी मुझे तमाम पुरानी पत्रिकाओं के वे परचे निकलवा दें जिनमें कभी नीलकान्त की कोई चीज छपी हो," मैं उसकी ओर देखता ही रह जाऊँगा और वह कहने लगेगा···"दुबली-सी, सुन्दर-सी वह लड़की..... उसके अंग-प्रत्यंग..." क्षमा करना, जयश्री, मुझे तुम्हारे अंग याद रख सकने का यदि अधिक नहीं तो थोड़ा-सा हक तो जरूर है। मैं अपने ठण्डे साँस को हलक में उतार लेने की कोशिश करूँगा और वह कहेगा... "ऐसा मालूम होता है कि मैंने उस लड़की को कभी आगे भी देखा है, पहचाना-सा सुन्दर चेहरा...बहुत समय हुआ शायद कभी आपके ही मकान पर..." दिन-पर-दिन, सप्ताह-पर-सप्ताह, फिर महीने और साल और कई साल गुजरते चले गए, वह दूकानदार मुझे और तो सब-कुछ पूछता रहा, बताता रहा, लेकिन उसने कभी न कहा..."आज हमारी दूकान पर एक लड़की....." फिर धीरे-धीरे मैंने उसकी दूकान पर

जाना शुरू कर दिया, खरीदार आते, साईकलों पर, टांगों पर और मोटरों पर.....मोटरों पर आनेवालों को दूकानदार दूकान से बाहर जाके अपने साथ अन्दर ले आता, टाँगें पर आनेवालों को दूकान की दहलीजों पर स्वागत करता, साईकलों पर आनेवालों को सिर्फ कुरसी पर ले उठकर अपना ध्यान दे सकना काफी खयाल करता और जब कोई पैंदल आता तो वहीं से बैठे-बैठे अपने किसी नौकर से उधर ध्यान देने को कह देता। इसी तरह किताबों की बातें और दूसरी कई इधर-उधर की बातें मैं सुनता रहा। कभी-कभी रास्ते का चक्कर काटकर भी मैं इस दूकान के आगे से गुजरता, घड़ी-पल रुकता और फिर चल देता, मैं जानता था क्यों ? तुम्हें मेरी चीजें लेने आना है, कभी-न-कभी आना है, जरूर आना है, और क्या मालूम कि शायद इसी समय....."

ये कई साल पहले की बातें हैं...उस समय मेरे बाल मेरी माशूसी से भी अधिक काले थे, धीरे-धीरे तुम्हारी याद मेरे अन्दर यों समाती चली गई जिस तरह पानी के अन्दर नमक की डलिया घुलकर समा जाती है, डलिया का अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता है, लेकिन पानी कुछ नमकीन हो जाता है। तुम याद करना, तुम्हारी बातें करना और किसी-न-किसी बहाने से तुम्हारा नाम लेना मैंने छोड़ दिया, लेकिन अन्दर-ही-अन्दर मैं उस पानी की तरह हो गया जिसके अंदर नमक की डलिया हल हो चुकी हैं, पुरानी याद के साथ-साथ माशूसी का रंग भी बदलता गया। और वह इतनी तारीफ न रही और मेरे बालों ने भी, जो कई साल पहले मेरी माशूसी से भी अधिक काले थे, अपना रंग बदलना शुरू कर दिया.....और आज...जिस तरह किसी त्योहार की हम साल भर प्रतीक्षा करते हैं कि कब आएगा, अभी इतने दिन बाकी हैं, अब इतने दिन रह गए हैं और फिर जब वह त्योहार आता है, एक ही दिन में गुजर जाता है, इसी तरह आज वह लम्बी प्रतीक्षा, कई साल

पहले का विचार...दूकानदार आज शाम के समय आया और उसने कहा..."आज एक लड़की हमारी दूकान पर आई थी....." मुझे भूली हुई कोई याद आ गई और इस याद के साथ ही मेरे बदन में झरझरी... लेकिन मैं पल भर के लिए यह भूल गया कि तुम कई साल पहले की लड़की अब लड़की नहीं रही होगी। दूकानदार ने कहा—"वह कहती थी—आप को तकलीफ तो होगी, लेकिन वे तमाम पत्रिकाएँ, अखबार और किताबें निकलवा दें जिनमें कभी नीलकान्त की कहानियां छपी हों", और, जयश्री, दूकानदार की यह बात सुनकर मुझे यों लगा जैसे यह तो जरूर होना ही था, तुम्हें आना ही था और तुम आ गईं...आयु के साथ-साथ मुझ में गम्भीरता आ गई है, वह यौवन की चंचलता नहीं रही। आज बुढ़ापे की संजीदगी है, दूकानदार कहने लगा—"मैंने उससे कहा... "मैं कोशिश करूँगा, पुरानी चीजें जरा दूर रखी हैं, किताबें तो करीब ही हैं, लेकिन पत्रिकाएँ...वह कहने लगी—'नहीं आपको अभी तकलीफ करनी होगी मुझे अम्मीजी ने कहा है आज ही लेकर आना।'

आह ! जयश्री ! यदि आज्ञा दो तो कह लूं, मेरी जयश्री ! मुझे मालूम था...तुम्हें मेरी चीजों की जरूरत पड़ेगी, जरूर पड़ेगी मुझे मालूम था...आज से कई साल पहले...मालूम था...

तुम्हारा
नीलकान्त

नोट—किसी भावावेग के प्रभाव में मैंने यह पत्र लिखना शुरू किया था। कुछ दुहराने को जी चाहता था, दुहरा लिया है, लेकिन पत्र के समाप्त होने के साथ मेरे भावों के उस न रुकनेवाले वेग में कुछ शान्ति-सी आ गई हैं, मैं यह पत्र तुम्हें नहीं भेजूंगा, हां, उन जबानी पत्रों की तरह जो मैंने हजारों की संख्या में तुम्हें भेजे हैं.....कई साल पहले...उन पत्रों की तरह इसे भी भेज दूंगा, अच्छा, जयश्री ! मैं इसे

समाचारपत्र मैं छपवा दूंगा, फिर जब-कभी तुम मेरी इस कहानी को पढ़ोगी, तुम्हें मालूम हो जाएगा कि यह पत्र था...परन्तु पत्र की जरूरत भी क्या है जबकि तुम अभी मेरे लेख, मेरी कहानियां खुद पढ़ रही हो या अपनी लड़की से सुन रही हो...वह भी तो पत्र ही है, समय-समय पर अलग-अलग सूरतों में...तुम्हारी ही तो बातें हैं...चाहे हुई थीं... कई साल पहले...कई साल.....पहले.....

नीलकान्त

दो राहा

दो राहा

नीला को गीता से बातें करते हुए मैंने अपने कानों से सुना था। १९४४ की बात है, सितम्बर का महीना था। लाहौर में अब गर्मी नहीं पड़ रही थीं पर मेरा डाक्टर मुझे कहता था अभी मुझे लाहौर वापिस नहीं लौटना चाहिए। एक महीना भर पहाड़ पर और रहूँ। यह डलहौजी पहाड़ की बात है।

नीला बकरियां चराया करती थी। उसकी दो अपनी गाएँ भी थीं और वह रोज कोठियों में दूध देने आया करती थी। उसने मुझे इतना भर बताया था कि उसके घर में वह स्वयं और एक उसकी मां थी। उसकी बडी बहिन चम्बे में ब्याही हुई थी, और भाई उसके कोई हुआ ही नहीं था। उसका बाप बड़ी लड़ाई में भरती हो गया था, और उसकी मौत के बाद उसकी माँ को सोलह रुपए महीना पेंशन मिलती थी।

जब कभी मैं उससे पूछती थी, तू शादी कब कराएगी ? और तब तेरी मां अकेली रह जाएगी ? तो वह कुँवारी लड़कियों की तरह ऊपरी मन से नहीं-नहीं कहती थी। बल्कि उसकी बात से यह सच प्रतीत होता था कि उसने शादी न करने की पक्की धारणा कर ली हो, फिर कोई और बात करने के बजाय वह पहेली-सी मुंह बन्द कर लेती।

एक दिन अभी पौ ही फटी थी कि मैंने उसे उस मोड़ के शिखर पर बैठे देखा जहाँ से एक सड़क छावनी की ओर चली जाती थी और दूसरी पगडंडी उनके गांव की ओर चली जाती थी। छावनी वाली सड़क आगे चल कर नीचे शहरों की ओर मुड़ जाती थी और यहीं से

सारी सवारियां आती जाती थीं।

कई जगह ऊँचे-ऊँचे पत्थर चप्पा-चप्पा स्थान को ओट की तरह एक दूसरी से अलग कर देते हैं; और कुछ कदम के दूरी पर खड़े हुए आदमी भी एक दूसरे को नहीं देख सकते। मुझे ऐसा लगा जैसे नीला गा रही हो। मेरा ख्याल है जहाँ तक बस चला उसने कभी किसी को गा कर नहीं सुनाया होगा, नहीं तो नीला की समवयस्का कई लड़कियां थोड़े से पैसे लेकर मुझे अपने पहाड़ी गीत सुना देती थीं, पर नीला हर बार मेरी बात टाल देती थी, और आज मैं नीला के मुंह से कोई-न-कोई गीत सुन लेना चाहती थी।

उसके गाने में बाधक न बनना चाहती थी, इसलिए उसकी आवाज के सहारे चलते-चलते पिछली ओर से मैंने उसका पता लगा लिया, और उसकी बाईं ओर एक बड़े पत्थर की ओट में खड़े होकर उसका गाना सुनने लगी। उसकी आवाज भरी हुई थी और वह इतने धीमे स्वर में गा रही थी जैसे कोई केवल अपने सुनने के लिए ही गा रहा हो।

फिर मुझे ऐसा लगा जैसे एक और लड़की आकर उसके पास बैठ गई हो, उसे मैंने उसकी आवाज से पहिचान लिया, वह उसकी सहेली गीता थी। वे गातीं रहीं और जब वे बातों में लग गईं तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे नीला की पहेली कमल-पंखुड़ियों सी खुल रही थी।

आज वर्षों बाद भी जब मैं नीला की कहानी लिख रही हूँ, मुझे ऐसा लगता है जैसे नीला कमल थी, नील-कमल, जिसके अधर जल से भरे सरोवर में भी सूखे थे। जिंदगी की प्यास उसके सूखे अधरों पर तड़प रही थी, और उसकी कहानी एक ऐसे दोराहे पर खड़ी थी जहाँ दो सड़कें मिलतीं हों और दोनों अलग-अलग कट जाती हों। जब गीता चली गई तो मैं भरा हुआ दिल ले कर नीला के पास गई थी, उसके आँसुओं से मेरे हाथ भीग रहे थे.....और वह फिर, वही बातें मुझे भी सुनाती रही थीं। मुझे नीला की बातें वैसी ही याद हैं, पर उसका

पहाड़ी उच्चारण याद नहीं, अब इस कहानी की जबान मेरी है पर बात उसकी अमानत हैं। और उसकी अमानत मैंने वैसे की वैसी अछती रक्खी हैं।

मै नीला की कहानी लिख रही हूँ, और सोच रही हूं शायद उसका प्रेमी, जो मैं जानती नहीं किस नगर में रहता है, यह कहानी पढ़ ले। वर्षो बीत गए यह बात हुई थी, उस दोराहे पर सड़के अब भी मिलती हैं, और मुझे पता है, नीला के जीवन की राह, उसके परदेशी की राह से कभी नहीं मिलेगी, फिर भी सोचती हूं, उसका परदेशी शायद यह कहानी पढ़ ले और नीला की याद उसके मन में कसक पैदा करे, और वह या फिर वैसा ही कोई और परदेशी नीला के प्यार को दो राहों पर रुकने के लिए न छोड़ दे।

नीला गा रही थी—

अलगोजू बजदा पत्तरणे की
मेरा मन नहीं लगदा कत्तरणे की
मियां अलगोजूआ.....मीकी सौगी लयी जा
मियां अलगोजूआ.....

अलगोजू बजदा ढाणिए की
मेरा मन नहीं लगदा पाणीएं की
मियां अलगोजूआ.....मी की सोगी लयी जा
मियां अलगोजूआ...
अलगोजू बजदा दोही दोही के
मेरा मन नहीं लगदा रोई रोई के
मियां अलगोजूआ.....मी की सौगी लयी जा
मियां अलगोजूआ.....

गीता की आवाज आई..."नीला, आँखों से बह-बह कर तेरे आँसू

गरेबान में से निकल रहे हैं, सीप के बटनों से मोटे-मोटे तुम्हारे आँसू मुझ से नहीं देखे जाते।"

"गीता। इन हवाओं से कहो मेरे आँसू सुखा दें, तू यहाँ किस तरह आई है, गीता। इतनी सवेरे; अभी तो घोंसलों में पंछी भी नहीं जागे।"

"तू भी इतने सवेरे आई है, नीला"।

"मेरे लिए समय कुसमय सब एक समान है"।

"अपना चेहरा तो देख जैसे किसी ने हल्दी मल दी हो, तूने तो शायद इन बालों को अभी गूंथ के भी नहीं देखा, रस्सियों से खुर्दरे हो रहे हैं, नीला, तू रात चितपूरनी के मेले में नहीं आई थी, कल मुझे बचन दिया था कि रात को जरूर आएगी"।

"सारा गांव जैसे उचक उचक कर तुम्हारी राह देख रहा था। पिछले वर्ष यही दिन था जब मेले के झूमर में तू हमारे साथ मिलकर गाई थी और अब तक तेरे गाने की धूम गांव भर में मची हुई है। तेरी फबन हमारी आँखों में से नहीं जाती। सफेद बाकड़ी वाला काले सूफ का झगला तूने पहन रक्खा था, और तेरी बारीक चूनरी पर गोटा यूँ चमक रहा था जैसे....."

"रहने दे गीता, बस रहने दे...आज भी मेरे गले में वही झगला है, आज भी मेरे सिर पर वही चूनर है, पर आज मेरे झगले की बांकुड़ी उतर चुकी है, आज मेरी चूनर का गोटा उधड़ चुका है। उस सुन्दर झगले का यह हाल हो गया है, उसी छगले को गले से लगाये फिरती हूँ- मेला हो जाता है तो साबुन के साथ धोकर फिर से गले से लपेट लेती हूँ.....गीता।" नीला की यह आवाज थिरकने लगी...

बड़े धीमे पर भरे हुए गले से गीता की आवाज आई, "पिछले वर्ष तेरे पाँव में चाँदी की पाजेब पड़ी हुई थी, तेरी बाँईं कलाई पर फूलों का गजरा लिपटा हुआ था, तेरे कानों में पतली तार की बालियां थीं।"

"और आज इन पत्थरों से टकरा टकरा कर मेरे टखनों से खून फूट

रहा है, मेरी एड़ियों में बिवाइयाँ फट गई हैं, बस कर गीता, मुझ से और कुछ न पूछ, यह कहानी अभी खत्म होने वाली नहीं, गीता तू यहाँ किस लिए आई है ?"

"जिस पत्थर पर तू बैठी है नीला, यहाँ से वह सामने वाली सड़क पूरी दिखाई देती है।"

"हाँ" नीला ने उत्तर दिया।

"और नीला, आज रामू ने शहर जाना है।"

"शहर, रामू शहर जाएगा ?"

"हाँ नीला, वह कह रहा था, मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, मुझे पक्का पता है, नीला, रामू जल्दी ही आ जाएगा।"

"गीता, तू बड़ी अच्छी है गीता, तुझे पक्का पता है कि रामू जल्दी आ जाएग," फिर नीला ने जैसे डर कर कहा, "अच्छा गीता, यदि वह न आया तो...?"

"यह किस तरह हो सकता है नीला, आज मैं उसे इसी दोराहे पर मिलने आई हूँ, और कुछ दिनों के बाद मैं उसे इसी दोराहे पर फिर मिलने आऊँगी, आज मैं उसे छोड़ने आई हूँ तो फिर उसे लेने आ ऊँगी।"

"गीता.....गीता....."

"तुझे क्या हो रहा है नीला ?"

"इस दोराहे की ओर देखते-देखते मेरी आँखें भी रह जाती हैं, यह दोराहा, जहाँ दो सड़कें मिलती हैं, यह दोराहा, जहाँ दो सड़कें अलग हो जाती हैं..."

"नीला, कुछ और भी बताना....."

"और क्या बताऊँ, मेरी सारी कहानी यहीं खत्म हो जाती है।"

"पिछले वर्ष एक परदेशी आया था, उसी की बात कह रही हो नीला, वही जो डाकबंगले में रहता था।"

"रामू तू शहर मत जा, मुझे डर लगता है, देख तो नीला की क्या दशा ?"

"मैं भी कोई परदेसी हूँ, गीता, मैं तो तेरे इसी गाँव का हूँ, तेरे अपने गाँव का।"

"रामू दाड़म पके हुए हैं, चार दाने ले जा, बड़ा मीठा दाना पड़ा है।"

"गीता मेरे साथ आ, उस मोड़ तक, मैं वहां से शहर को हो लूंगा, और तू गाँव को।"

"चलो" और गीता रामू को छोड़ने चली गई।

नीला की सिसकियों में से आवाज़ आई,..."परदेसी मैं अब तक वहीं तुम्हारी राह देख रही हूँ जहां दो सड़कें मिलती हैं।

हड्डियाँ और फूल

"रामू तू शहर मत जा, मुझे डर लगता है, देख तो नीला की क्या दशा ?"

"मैं भी कोई परदेसी हूँ, गीता, मैं तो तेरे इसी गाँव का हूँ, तेरे अपने गाँव का।"

"रामू दाड़म पके हुए हैं, चार दाने ले जा, बड़ा मीठा दाना पड़ा है।"

"गीता मेरे साथ आ, उस मोड़ तक, मैं वहां से शहर को हो लूंगा, और तू गाँव को।"

"चलो" और गीता रामू को छोड़ने चली गई।

नीला की सिसकियों में से आवाज़ आई,..."परदेसी मैं अब तक वहीं तुम्हारी राह देख रही हूँ जहां दो सड़कें मिलती हैं।

हड्डियाँ और फूल

हड्डियां और फूल

वही पठानकोट से डलहौज़ी जाने वाली सड़क थी, वही राज था और वही राज की गाड़ी थी, पर आज राज की बाईं ओर एक लाल चूड़े वाली लड़की बैठी हुई थी, जिसके साथ पिछले महीने राज का विवाह हुआ था, और आज से तीन वर्ष पूर्व जब राज इस रास्ते से गुज़रा था, उसके साथ अनु बैठी हुई थी।

अनु ने राज के साथ एक दिन ही यात्रा की थी, पर इस लाल चूड़े वाली ने सारी आयु भर साथ देना है। राज सोच रहा था, कैसा अच्छा हो यदि सारी आयु की यात्रा में भी वह इस लड़की से उतना ही परिचित हो सके जितना वह उस एक रात में अनु का परिचित हो गया था।

पाँच वर्ष हुए संयोग-वश राज और अनु एक दिन की यात्रा के लिए इकट्ठे हो गए थे। राज अपनी गाड़ी में डलहौजी जा रहा था, पठानकोट से गुजरते हुए मोटरों के अड्डे पर उसने अनु को पहचान लिया था। अमृतसर से शायद वह रेलगाड़ी में आई थी और अब दोपहर को डलहौज़ी जाने वाली अंतिम बस की प्रतीक्षा कर रही थी। राज ने अपनी गाड़ी रोक ली, और अनु ने डल होजी तक राज की गाड़ी में जाना स्वीकार कर लिया था।

इस से पूर्व राज ने अनु को केवल एक बार देखा था। किसानों के एक उत्सव में अनु गा रही थी और राज सुनने वालों में था। तब उत्सव के प्रधान ने चाय पीते समय राज का अनु से परिचय कराया था

और एक वर्ष बीत जाने पर भी अनु की याद राज के बदन में चुभ सी जाती थी। राज ने कभी भी अनु को अपनी दुनिया की वस्तु नहीं माना, इस लिए पूरे वर्ष भर में उसने अनु को मिलने का प्रयास नहीं किया, पर इस चुभन को वह अपनी वस्तु मानता था, अपने दिल के खून से रची हुई वस्तु, और इसीलिए वह अपने एकान्त दिनों में कई बार इस चुभन को अनुभव कर लेता था, और पिछले वर्ष अनु का नाम और भी चमक गया था। चीन जाने के लिए जब हिन्दुस्तान के कुछ कलाकार चुने गए तो पंजाब की ओर के अनु चुनी गयी। अनु के पंजाबी गीत चीनी लड़कियों ने सीखे, और देश के बड़े-बड़े समाचार पत्रों ने बड़े गर्व के साथ अनु के चित्र छापे, इस तरह अनु को और भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी और राज उसे मिलने में और भी सकुचा गया था। यह भी एक आकस्मिक घटना थी कि राज ने पठानकोट के बसों के अड्डे पर अनु को पहचान लिया और अनु ने डलहौज़ी तक राज की गाड़ी में जाना स्वीकार कर लिया था।

पठानकोट से बहुत मील दूर जाकर पता चला कि पिछले तीन दिन की लगातार वर्षा के कारण अचानक आगे की सड़क टूट गई थी, और लगभग बीस मजदूर कुदाल और बेलचे लिए सड़क को जोड़ने जा रहे थे। राज की गाड़ी खड़ी हो गई। आगत संध्या अवश्य डूबते सूर्य की किरणों से रंगीन होगी, और सिर पर आ रही रात जंगली फूलों की गंध से सुगंधित होगी, पर वह रात किस छत के नीचे व्यतीत होगी, इसका किसी को कुछ पता न था। राज ने सोचा, पीछे पठानकोट ही लौट चलें और वहीं रात गुजारी जाए। बाईं ओर पर्वत की शरण लिए जैसे उसके पांव में पड़ी चाय की एक छोटी सी दुकान थी। पीछे की ओर लौटने से पूर्व राज ने दुकान वाले को चाय बनाने के लिए कहा। जितनी देर में चाय तैयार होती वह पर्वत पर चढ़ती पगडंडी की ओर चला गया, अनु गाड़ी में बैठी रही।

अनु के पार्श्व में बैठे हुए राज के मन में जैसे नन्हीं-नन्हीं फुहार-सी पड़ रही थी, भीगे और धुले हुए मन से अब वह चाहता था कहीं अपना मस्तक झुका दें।

उसके पाँव के सामने अब एक के स्थान पर दो पग-डंडियाँ हो गईं, जिस ओर से पानी से भरे नाले के बहने की आवाज आ रही थी, उसके पाँव उसी ओर मुड़ गए। पहाड़ की बगल में से वह नाला ऊँची छलांग लगा कर गिरता था। नाले के किनारे पर मुश्किल से चप्पा भर पथरीली जमीन थी। सामने पर्वत की चौड़ी पीठ थी, और वह पथरीली जगह उस पीठ की ओर बनी हुई सीमा पर जाके समाप्त हो जाती थी। राज को जैसे उस सीमा ने आवाज़ देकर बुला लिया। उस सीमा पर पाँव रखते ही राज को ऐसा लगा कुछ करामात जैसी बात हो गई हो।

वह दहलीज, पर्वत में एक मंदिर की दहलीज थी। एक पहाड़ी चट्टान ने जैसे उस मंदिर को अपने हृदय में रक्खा हुआ था। सड़क से जाते हुए या पर्वत पर चढ़ते हुए किसी को सपने में भी इस मंदिर के होने का विचार न आ सकता था। भीतर कोई उठाकर रक्खी हुई चीज न थी। शिव और पार्वती की कुछ मूर्त्तियाँ थीं जो उसी बड़ी वाली चट्टान को खोद-खोदकर बनाई हुई थीं, और उन पर बूंद-बूंद पानी टपक रहा था। चट्टान के साथ लगते हुए एक बड़े वृक्ष की शाखाएँ मंदिर की छत से लिपटी हुई थीं। उनका रंग पानी से भीग-भीगकर लोहे के रंग-सा हो गया था। राज का मस्तक झुक गया। शिवजी की ओर पार्वती जी की ओर, या और किसी देवी देवता के प्रति उसे कोई पुराना स्नेह न था, पर आज राज को लग रहा था कि क्या मूर्त्ति वाले पत्थर अथवा साधारण पत्थर सभी देवता बन गए हैं, और उसके मन में एक गंभीर—गंभीर उपासना जाग पड़ी—

इस उपासना के लिए कोई देवता प्रत्यक्ष न था, पर राज को लगा,

आखिर मस्तिष्क ही तो देवताओं को जन्म देते हैं। करामात देवताओं की नहीं होती, मस्तिष्कों की होती है, और आज उसे अपना मस्तिष्क बड़ा सच्चा और सुन्दर लगा। उसे कण-कण में किसी के देवता बन जाने का भ्रम सा होने लगा।

पानी बूंद-बूंद राज के सिर पर, मुख पर, और शरीर पर टपक रहा था। जाने कितना समय बीत गया, उसके पांव ने लौटने से इन्कार कर दिया, और अंगों की शीतलता से राज को लगा कि अभी-अभी वह भी मूर्त्ति बन जाएगा और शिवजी के पास, पार्वती के पास, उसकी मूर्ति भी खड़ी हो जाएगी। उसने एक बार बाहिर की दुनिया के बारे में सोचा, पर उसे लगा जैसे किसी ने भी उसे आवाज न दी हो, और अब वह वहीं खड़ा रहने के लिए तयार था। वर्षों के लिए, युगों तक...।

दांए कंधे के पास राज को यूं लगा जैसे किसी ने जीवित सा, गर्म सा साँस लिया हो, और राज ने देखा, अनु उसके पार्श्व में खड़ी है, देर से खड़ी होवेगी, क्योंकि बूंद-बूंद टपक रहे पानी से वह भी पूरी तरह भीगी हुई थी। दोनों ने इस मंदिर के आश्चर्य को अपने में भरा हुआ था और दोनों की आँखों में एक तृप्ति थी।

तब पुजारी आया। सिर से पाँव तक उसने एक ऊनी चोला पहिना हुआ था, उसने एक जंगली फूल शिवजी की मूर्त्ति से स्पर्श किया और आधा-आधा फूल दोनों में बांट दिया।

"बच्चा ! मन से अराधना करो, जो मांगोगे माता पारवती देंगी।"

राज को प्रतीत हुआ, साधारण पुजारियों जैसी उसकी आवाज न थी।

पत्थरों की गूंज में से जैसे एक मधुर सी भाव भरी आवाज आई थी।

अनु ने अपने भाग के आधे फूल को हथेलियों में दबाकर और मंदिर

से बाहिर आ गई। अनु जैसे बाहिर की दुनिया की आवाज थी, जिसके पीछे राज को भी मंदिर से बाहर आना पड़ा।

राज और अनु ने जब चाय पीली तो वे वापिस पठानकोट जाने के लिए तैयार हो गए तो पुजारी ने पर्वत की पगडंडी के नीचे सड़क की ओर उतरते हुए उन्हें ठहरने का इशारा किया। मक्की की गर्म रोटी उबले हुए चावल और उड़द की दाल थाली में रखकर पुजारी उनके लिए ला रहा था।

"देवता का प्रसाद" और पुजारी ने थाली राज के सामने रख दी।

पुजारी में पुजारियों वाला भाव नहीं था, राज में दर्शकों वाली श्रद्धा नहीं थी, दोनों जैसे एक स्थान पर खड़े थे, और दोनों उस एक ही ओर को देख रहे थे जहा जिंदगी सुन्दर दिखाई देती है।

"आप चाहें तो रात मेरी कोठरी में रह सकते हैं।"

"नहीं, हम आपको इतना कष्ट नहीं देंगे।"

"मेरे पास दो छोटी कोठरियां हैं, आप चाहें तो मैं आपको एक दे सकता हूँ।"

पठानकोट को वपिस जाने का राज और अनु को कोई उत्साह न था। उस शहर के किसी होटल का कमरा भी उतना ही बेगाना था जितनी इस मंदिर की कोठरी।

राज और अनु ने अपना-अपना विस्तर पुजारी की कोठड़ी में रख दिया।

सूर्य पश्चिम की ओर ढल गया था, पानी की सफेद धारा पहिले तो सुनहरी रंग की हो गई, फिर रंग की वह झलक भी जाती रही। संध्या और गहरी हो चली और पानी की आवाज और ऊँची और विशाल हो गई। इतनी ऊँची और विशाल कि जिसके सामने मानवी मन की नन्हीं-नन्हीं आवाजों का जसे आस्तित्व ही न रह गया हो।

अनु और राज को यह सब बड़ा स्वभाविकसा जान पड़ा, उनके मुख पर भय की कोई रेखा न थी। एक दूसरे के प्रति आश्वासन उन्हें अच्छा ही लगा। छोटे-छोटे पत्थरों और पानी के छींटों से खेलते-खेलते उन्होंने संध्या और भीगहरी कर ली। जब रात के पहिले अंधेरे में से चाँदका प्रकाश फूट निकला, और शीत के पहले कम्पन ने उनके बदन झिझोड़े तो वे पानी के किनारे को छोड़कर कोठड़ी की छत के नीचे आ गए।

दूर कोनों पर उन्होंने चारपाईयाँ बिछालीं। राज के बिस्तर में गोइर्थ की एक पुस्तक थी। दीपक की काँपती लौ के नीचे बैठकर कई स्थलों से वह अनु को सुनाता रहा। पुस्तक के एक स्थल पर एक गायक लड़की का जिक्र आता था, वह पिआनो बजाती थी, उसका चित्रकार मित्र पास बैठा सुन रहा था, फिर पिआनों के सुरों में से सपने जागते थे.....। फिर राज और अनु को प्रतीत हुआ, आज की रात गोइर्थ के उपन्यास वाली रात थी, और दोनों सपनों की पकड़ से काँप गए।

'तू' और 'आप' का भेद जाने कब मिट गया था, अनु ने रात से जादू को अपने बदन से दूर हटाते हुए, पूछा—

"राज तुम्हें नींद नहीं आई ?"

"अभी नहीं !"

दोनों चुप रहे, फिर सपनों ने उन्हें अपनी पकड़ में ले लिया और राज ने कहा—

"अनु सुन्दरता का कोई पार नहीं पा सकता कला क भी कोई अंत नहीं होता पर पिछले वर्ष मुझे इस तरह लगता रहा कि जो कुछ मैंने तुम्हारे गीतों में सुना था वैसा मैंने और कहीं नहीं सुना।"

"हमेशा तो नहीं पर कभी कभार मुझे भी ऐसा लगता है जैसे अपने किसी गीत में मैंने अपनी किसी चीज़ को भरने से बचा लिया है।"

"अनु ! जब मंदिर में पुजारी ने कहा था, बच्चा आराधना करो, जो माँगोगे, माता पार्वती देगी,—उस समय तुमने क्या माँगा था ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ भी माँगने का ध्यान नहीं आया ?"

"मैं बेचारी पार्वती को परेशान न करना चाहती थी।"

"अनु !"

अनु ने कोई उत्तर न दिया। राज की चारपाई चाँद की चमक में भीगी हुई थी, और उस प्रकाश में राज ने अपने मन को पहिली बार देखा, और जो कुछ उसे अपने मन में दिखाई दिया, उसे वह किसी अन्य से भले ही छुपा ले पर अपनी आँखों से नहीं छुपा सकता था।

"अनु, तुमने जीव नमें कभी प्यार किया होगा ?',

"हाँ।"

"फिर।"

"मन के अतिरिक्त दुनिया की हर चीज़ हमारी अलग-अलग थी इस लिए सदा अलग-अलग ही रही।"

"बहुत देर हो गई न ?"

"हां कई वर्ष।"

"वह अब कहाँ है ?"

"सुनती हूँ, बड़ी दूर है, बड़ी रंगीन दुनिया में जहाँ मेरी पहुच नहीं।"

"मन भी दूर हो जाते हैं अनु ?"

"जिंदगी की कीमतें बदल जाती हैं।"

"तुम अब भी उसकी प्रतीक्षा करोगी ?"

"हाँ।"

"कब तक ?"

"जब तक उसकी बहुत मीठे और बहुत कड़वे पानी की प्यास न मिट जाएगी।'

"नारी के मन को समझना शायद बड़ा कठिन होता है अनु।"

जाने क्यों मुझे कलेयर की याद आई है, कलेयर ने कुछ महीने बाइरन के साथ गुजारे, और फिर आयु भर विवाह नहीं किया, उसकी और बाइरन की एक बच्ची भी थी, वह बच्ची भी मर गई, बाइरन भी मर गया। और जब कलेयर ८० वर्ष की हो गई, एक लेखक उससे मिलने गया, उसे बाइरन की जीवनी लिखनी थी, और कलेयर ने उसे जिंदगी का सब से बड़ा सत्य बताया, 'मैं बाइरन के सम्बन्ध में बहुत कुछ नहीं जानती। मैंने उसे प्यार नहीं किया, मेरी और बाइरन की एक लड़की जरूर हुई थी और वह छोटी-सी ही इटली के एक कनवेंट में मर गई थी।

लेखक ने शैले की जीवनी भी लिखनी थी। वह जानता था कि कलेयर शैले की पत्नी मेरी की बहिन थी, इसलिए उसने कलेयर से शैल के बारे कुछ में पूछा।

अस्सी वर्ष की आयु में भी कलेयर के मुख पर जवानी लौट आई। लेखक ने हैरान होकर पूछा—

,'कलेयर, तुम शैले को प्यार करती थी।" कलेयर ने जवाब दिया, 'हृदय और आत्मा के साथ।"

कलेयर की कहानी समाप्त हो गई, अनु और राज अपने-अपने मन की सिलवटों में खो गए।

"अनु, ग़म में भी एक नशा होता है, और जब किसी को इसकी आदत पड़ जाए, तो वह बड़े यत्न से बिखरे हुए ग़म को इकट्ठा कर लेता है।"

"शायद।"

"अनु, मैं यह नहीं कहता कि तुम किसी को भूल जाओ, पर क्या बादल के एक टुकड़े से पूरे सूर्य को रोके रखना चाहिए ?"

"अन्धकार में रहने की शायद मुझे आदत पड़ गई है राज ! मुझे यह अच्छा लगता है।"

"यदि इस अन्धकार में वह फिर लौट आए।"

"वह....."

कितने क्षणों के मौन के अनन्तर राज ने उठकर अनु के मस्तक पर हाथ रख दिया। अनु का सारा मुख आँसुओं से भीगा हुआ था।

बीस कदमों की दूरी पर बह रहे पानी की आवाज जंगली फूलों की सुगंध जैसे चांदनी में भीगकर आ रही थी, राज के गर्म चौड़े जवान हाथों ने अनु के हाथ दबाए।

"राती बड़ी सुहानी है," राज का सांस अनु के मस्तक को छू गया।

"इसीलिए आज मुझ से सहारी नहीं जा सकी।

"अनु !"

"क्या दुनिया में 'कारण' ही सब कुछ है ?"

"कारण की संतुष्टि के लिए भी कारण ढूंढ़े जाते हैं।"

"मुझे कारणों के सहारे की जरूरत नहीं।"

"फिर मुझ से भी 'कारण' जैसा प्रश्न न करना, पर अनु तुम्हारे जीवन के शेष वर्ष यदि मैं माँग लूं ?"

"राज".....अनु के साँस में सैकड़ों सुगंधियाँ मिल गई, और अनु ने सुगंधियों का जैसे घूँट भरते हुए कहा, "राज, मेरे पास अब देने योग्य कुछ नहीं।"

वर्षों से वर्ष बदल लो, अनु, मेरी जिंदगी से जिंदगी बदल लो।"

"इतने सुन्दर हृदय के बदले में मैं क्या दूँगी ?"

"मुझे बदले में कुछ न चाहिए 'अनु'... अनु ने अपना मुख राज की चौड़ी और चिट्टी हथेलियों में रख दिया, और अनु के आँसूओं का जैसे

बाँध टूट गया।

"राज, तुम्हें पता है इस समय मेरे दिल में क्या आया है ?"

"जो कुछ भी आया है, ठीक होगा।"

"तुम्हें शायद अच्छा न लगे।"

"अनु जो कुछ तुम्हें अच्छा लगता है, मुझे भी अच्छा लगेगा।"

"राज ! वह, तुम से अच्छा नहीं होगा, पर मेरे मन में आया है, काश आज की यात्रा में तुम्हारे स्थान पर वह होता..."

राज ने उड़कर अनु का माथा चूम लिया, और फिर अनु की दोनों हथेलियों को अपनी आँखों से लगा लिया, "तुम्हारे सत्य को मैं प्यार करता हूँ अनु !,'

"नित्य के जीवन के छोटे-छोटे कष्ट शायद मैं सहन नहीं कर सकती, पर 'दुखांत' जैसा महान् कष्ट सहन कर सकती हूँ।"

तब एक औरत और एक मर्द होने का भेद दोनों को भूल गया, अपनी दाईं भुजा को अनु के सिरहाने पर रखकर राज सारी रात चार-पाई की पट्टी पर बैठा रहा, नींद ने एक पल भी उन से ना छीना और वह सारी-की-सारी रात उनके हवाले कर दी और फिर पूर्व ने रात के चारों कोनों में किरणें बाँध दीं।

प्रातःकाल की पहिली लाल किरणों के साथ राज और अनु ने उठ कर कुछ जंगली फूल तोड़े और मंदिर की सीमाएँ पार कीं।

बूँद-बूँद टपक रहा पानी उन्हें ऐसा लगा जैसे दैवी कृपा बरस रही हो। यहाँ उन्होंने एक दूसरे को ढूँढ़ा था। उन्हें ऐसा लगा, जैसे प्रत्येक पत्थर आज देवता बन गया हो, और उन्होंने मुट्ठी भर-भर फूल चारों ओर बिखेर दिए।

अनु के कंधे के पास छिपकर राज ने एक गहरा साँस अपने अन्दर भर लिया। अनु के भीगे हुए बदन की सुगंधि इसमें मिली हुई थी। राज को एक विश्वास सा प्रतीत हुआ कि वे दोनों जिंदगी के दो सुन्दर फूल

हैं, पर दोनों एक ही धरती और एक ही मौसम में पैदा नहीं हो सकते थे।"

प्रातः की यात्रा में एक स्थान पर राज की गाड़ी मुश्किल से टक्कर खाते-खाते बची, और जिस समय गाड़ी उलटने वाली थी, अनु ने ज़ोर से राज की भुजा पकड़ ली थी, 'मुझे आज मरने से भय नहीं लगता।" और राज ने अनु के हाथ को दबाकर कहा था, "मौत कभी इतनी सुन्दर नहीं हो सकती।"

जो कुछ उन्होंने एक दूसरे से पा लिया था न उससे अधिक कुछ प्राप्त किया जा सकता था, और जो कुछ प्राप्त किया था, उसे खोया नहीं जा सकता था। इसलिए फिर राज और अनु कभी न मिले।

आज जब राज की गाड़ी मंदिर के मोड़ के पास से गुजरी राज ने गाड़ी रोक ली, और अपने पास बैठी हुई लाल चूड़े वाली युवती से कहा—

'पाँच मिनट मेरा इंतज़ार करोगी ?'

"मैं साथ आऊँ"

"नहीं।"

राज ने शहर से संभालकर अपने साथ लाए हुए मोतिए के फूल निकाले, और पर्वत की छोटी सी पगडंडी पर चढ़ते हुए ओझल हो गया।

और जब कुछ मिंटों के पश्चात् राज वापिस आया तो उसकी पत्नी ने पूछा—

"वहाँ क्या था ?"

'एक मंदिर'

"आपने फूल चढ़ाये हैं।"

"हाँ"

कुछ देर ठहर कर राज ने ही कहा—

"जब मनुष्य मर जाता है, उसकी हड्डियों को क्या कहते हैं ?"

"फूल"

एक बात याद रक्खोगी ?

'रक्खूंगी'

"जब मैं मर जाऊँ, मेरे फूल यहीं चढ़ा जाना," पत्नी ने सहमे हुए मुख से एक बार राज की ओर देखा। राज के मुख पर एक पुरुष का वह सौंदर्य था, जो हजारों में से किसी एक को नसीब होता है, और राज ने मुस्कराकर कहा, "इस मंदिर पर वे फूल भी चढ़ाए जाते है।"

अंतिम पत्र

अन्तिम पत्र

प्रिय !

वैसे तो मैंने जब भी कोई गीत लिखा ।

मुझे यूँ प्रतीत हुआ मैं तुझे एक पत्र लिख रही हूँ ।

हाशिम कहा करता था

"ऐ निर्लेप पवन

तू तख्त हजारा की ओर जा"

लोक गीतों की सुन्दरी ने कभी डाक को था अपना सन्देशवाहक बनाया और कभी कपोत के पंखों में सन्देश बाँधे ।

वे पहले दिन अब बीत चुके हैं ।

जब कोई विरहिणी अपने केशपाश से धागा तोड़ कर

उसे किसी पथिक के वस्त्र–छोर से बांध देती थी ।

वे लोग भाग्यशाली होते हैं,

जो किसी पत्र-वाहक के पाँव की आहट सुनते हैं ।

किन्तु जब.....

जब किसी को पत्र भेजना सम्भव न हो

ऐसे अवसरों पर केवल पवन के झोंके ही रह जाते हैं,

जिनके छोर से कोई सन्देश बांध दे ।

जैसे कोई मेघ कालिदास का दूत बन गया था

मेरा हर गीत मेरा एक पत्र बन गया ।

मुझे याद है जब मैंने तुझे पहला पत्र लिखा

एक पराया गाँव था

और मैं सोचने लगी
गांव पराया है लेकिन तू क्यों पराया नहीं
तब मैंने तुझे पहली बार देखा था
देखा भी नहीं तेरी आवाज सुनी थी
और मुझे लगा
जिस वायु में तेरा स्वर मिल गया
उसमें से मुझे महक आने लगी।
तुझे भी उस गांव से लौट आना था और मुझे भी
तेरा भी वह उतना ही पराया गाँव था जितना मेरा
फिर मुझे किसी ने बताया
तुझे भी उसी नगर जाना था, जिस नगर मुझे
और उसी गाड़ी से तुझे जाना था, जिस से मुझे।
पता नहीं किस कालिदास ने हमें मेघ भेजे
जो पूरे दो दिन और दो रात बरसते रहे,
और जब तीसरे दिन हम उस गांव से चले
गाँव की पगडंडी पानी में डूबी थी।
खेतों की मेढ पर हमें पांच मील चलना था
और फिर हमें नगर की पक्की सड़क मिल जानी थी
पन्द्रह बीस पथिकों की संक्षिप्त सी टोली थी
सभी लोगों से मैं थोड़ा बहुत परिचित थी
परन्तु एक तू ही इतना अपरिचित था
जिस से मैं कुछ भी कह-सुन नहीं सकती थी।
फिर भी मैंने उन मेघों का धन्यवाद किया
जो कभी किसी कालिदास के पास पहुँचे थे
और जिन्होंने आज हमारी राह लंबी कर दी थी।
सूरज ने खेतों की मेंढ़ पर किरणें बिखेर दी थीं।

जब तेरी पतली और लम्बी छाया पृथ्वी पर गिरती
मैं उसे अपने शरीर पर ओढ़ लेती
और उस दिन के उपरान्त मुझे ऐसा अनुभव होने लगा।
जैसे मैं हर क्षण तेरी छाया तले रहती हूँ।

कितने ही दिवस बीत गए
एक दिन मैंने किसी से पूछा :
"यदि उसे कोई बुलाए तो वह आ जाएगा ?"
वह हँस दिया.....

"अगर तू बुलाए, वह सब कार्य छोड़ कर आ जाएगा"
"कभी उसे कहना.....
पता नहीं कहने वाले का मुँह कितना अच्छा होगा
एक दिन मेरे घर की दहलीज ने तेरे पाँव का परस पाया।
मैंने तेरा स्वर सुना
और मुझे ऐसा लगा
जिस वायु में तेरा साँस मिला
उसमें ही मुझे महक आने लगी।
सप्ताहों और महीनों की प्रतीक्षा के पश्चात्
जब कोई ऐसा शुभ अवसर आता
जहां मैं तेरा स्वर सुन सकती
और जब मेरे घर की देहली तेरे चरण छू पाती
और काली रातें सपनों के पांव तले चाँदनी बिछा देती।
एक दिन जब तुम आये
तुम्हारे हाथ में एक कागज था
और तुमने मुझे अपना गीत पढ़ कर सुनाया,
मुझे लगा
तुम्हारे स्वर जैसा मैंने कभी कोई स्वर नहीं सुना।

तुम्हारे गीत जसा मैंने कभी कोई गीत नहीं सुना।
मालूम नहीं क्यों तुमने कहा
"देर हुई मैंने यह लिखा था
पर इसमें जहाँ का जिक्र है
वह जगह मैंने कभी देखी नहीं
इसमें जिसका जिक्र है .....
वह कोई है ही नहीं"
और जब मैं वह कागज लौटाने लगी
तुमने कहा
"यह मैं वापस ले जाने के लिए नहीं लाया था"
यह वह क्षण था...
जब मैंने काले बादलों में सुनहरी गोट लगा ली थी
उस रात तारे मेरे दिल की तरह धड़क रहे थे
और मैंने उस रात तुम्हें पहली बार खत लिखा
और फिर उस रात ही नहीं
जब भी मैं कोई गीत लिखने लगी
मुझे यूं लगा,
मैं तुम्हें एक पत्र लिख रही हूँ।
इतना संयम और इतनी शिष्टता
बहुत से पुरुषों को प्राप्त नहीं होती,
हमारे मध्य समाज की दीवार थी
धर्म की दीवार थी
और हमारे संस्कारों की दीवार थी
ये बहुत ही झूठी कीमतें थी
पर तेरा आचार कितना ऊँचा था
तूने झूठी कीमतों की भी लाज रख ली

और किसी भी लीक का उल्लंघन न किया।
मेरे गीतों पर मेरे पत्रों पर
तुम्हारा नाम नहीं होता था,
मैं सोचती थी तुम स्वयं ही समझ जाओगे।
हमारे ओठों पर कुहरे की मानिंद चुप जमी रहती,
परन्तु तू जब कोई गीत पढ़ता,
सैकड़ों बहारें मेरे आंगन में आ जातीं
और ऐसे तीन वर्ष बीत गए।
फिर जैसे एक ही साथ सैकड़ों पतझड़ें छागईं
तुमने मुझे बताया
तुम्हें अब मेरे शहर से चले जाना है।
रोटी और उसकी आवश्यकता की किस प्रकार उपेक्षा की जा सकती थी।
मैं वैसे भी तो कई दीवारों के पीछे खड़ी थी।
तुझे कैसे रोक सकती थी
उस संध्या को तुमने मुझ से मेरे गीत माँगे,
और एक मेरी तस्वीर माँगी।
इन सभी वर्षों में यह तेरी पहली माँग थी।
तुम चले गए
दीवारों में एक और दीवार मिल गई
दूरी की दीवार,
और अब पत्र लिखने के अतिरिक्त
मेरे पास कुछ न रह गया था।
अखबार मेरे डाकिए थे
और इस भाँति यह पत्र
जिन्हें मैं केवल तेरे लिए लिखा करती थी।
संसार पढ़ता था।

कई लोगों के पांवों के आगे ऐसी दीवारें होंगी,
कई लोगों की वाणी इसी प्रकार विवश होगी
तभी तो कई लोगों ने अनुभव किया
मेरे गीतों में उनकी कथाये थी।
मेरे स्वप्न उनके स्वप्नों से मिलते थे
और मेरी वेदना में उन्हें अपनी कसक का आभास मिलता था
जीवन की राहें बड़ी अगम होती हैं।
और जब पथिकों के पांव में छाले पड़ जाते हैं
वे कभी एक दूसरे का आश्रय ले लेते हैं।
कभी मिल कर रो लेते हैं
कभी मिल कर गा लेते हैं
और फिर वे अपनी-अपनी राह आगे हो लेते हैं।
कई लोग बहुत अच्छे भी होंगे
बड़े प्यार वाले गुणवाले हुनर वाले
बड़े योग्य और गुण वाले
मान और प्रतिष्ठा वाले
परन्तु तुम कैसे थे
मुझे फिर कभी पवन में से सुगन्धि न आई।
वर्ष पर वर्ष बीत गये
बर्षों पश्चात् एक ऐसा दिन आया
जिसके मुख पर सब का सब सूरझ छिप रहा था
यह तेरा कैसा मिलन था
मेरी आँखें चौंधियां गईं
और जब तेरी सांस मेरी गर्दन से छुई
मुझे जैसे अपने से भी महक आने लगी।
मेरा नगर जैसे कह राहा था।

कभी मेरे घर ऐसा पाहुना नहीं आया
परन्तु तुम्हारे पास गिनती के दिन थे
तुम जैसे अपनी विदाई के क्षण को टालते रहे
मुझे जीवन के अन्तिम श्वास तक याद रहेगा।
और फिर अन्तिम दिन
अन्तिम दिन तुमने कहा था
आज कुछ न कहना
नहीं तो मैं कल भी जा न सकूँगा
और मैंने तुम्हें कुछ न कहा
इन हाथों से तूने गीत लिखे थे
और अपने होठों से तूने मेरे हाथों को स्पर्श किया
और मुझे यूं लगा
इन हाथों से मैंने तुझे जो पत्र लिखे थे।
आज तुझे वे सभी पत्र स्वीकार हो गए।
जाते समय तुमने कहा
"मैं फिर आऊँगा,
मैं फिर आऊँगा
बहुत शीघ्र आऊँगा।
यह तुमने मुझे जीवन में पहली बार वचन दिया था।
तुमने वचन दिया
और मेरा आंचल मोतियों से भर गया।
जीवन में पहली बार मैंने तेरे नयनों में आँसू देखे
मेरी उंगली ने तुम्हारे आँसू छुए
मेरे वर्षों के तपे प्राण भीग गए
और मुझे जीवन में तुम्हारा पहला पत्र मिला
"मैं तीस तारीख को आऊँगा
मेरी प्रतीक्षा को

तेरे इस एक ही वाक्य ने रंजित कर दिया।
और मुझे यूं लगा
मेरे पाँव तले इन्द्र-धनुष झूल रहा है।
तारीख निकट नहीं आ रही थी
मेरे श्वास शीघ्रता से चल रहे थे
और मैं सोचती थी कहीं ये श्वास समाप्त न हो जायें
घड़ी की सुइयां
मेरे हृदय की भांति धड़कती थीं।
और जब प्रतीक्षा की घड़ियां समाप्त हुईं
घड़ी ने भी अवश्य मेरी तरह सोचा होगा
कि उसका धड़कता हृदय बंद हो जाए।
अगला दिन भी बीत गया
उससे अगला भी
और मैं गाड़ी वालों से पूछती थी
क्या अब तुम्हारे नगर से गाड़ियां नहीं आतीं।
पन्द्रह दिन बीत गए
सोलहवें दिन सायंकाल तुम्हारा पत्र मिला
"मैं बीमार हूँ"
अचानक मेरी नाड़ियों पर कुछ दबाव पड़ा है।
जब स्वस्थ हो जाऊँगा लिखूँगा
मुझे यूं लगा
मेरी एक एक नाड़ी टूटती जा रही थी
मेरी नाड़ियों में गांठें पड़ गई थीं
उन में से मुझे ठीक सांस न आ रहा था,
लम्बी और अंधेरी राहें मेरे पावों के आगे थीं
तुम जानते हो

हमारे समाज के मूल्य और कैसे हैं
यहां नारी का मान कच्चे धागे की तरह है
और उसकी आयु
बर्जनाओं और अधीनता में व्यतीत होती है।
हमारी मन्डियों में
गेंहू भी बिकती है
ज्वार भी बिकती है
और नारी भी बिकती है
आर्थिक दासता नारी को दासी बना देती है।
और यह दासता
फिर मानसिक दासता में परिवर्तित होती जाती है।
मानसिक दासता जब नासूर बन जाती है।
तब लोग नासूर के बदन पर
पवित्रता "के रंगीन वस्त्र ओढा देते है
और यह पवित्रता
जो स्वेच्छा से नहीं
विवशता में ही जन्म लेती है
समाजी कोष की अमूल्य मुद्रा बन जाती है।
और समाज
हर नारी को इस मुद्रा से तोलता है।
मेरे रोम रोम ने प्रार्थना की
मेरे रोम रोम ने तेरी कुशलता चाही
और मैं विधाता की दया की बाट जोहने लगी।
किसी ने एक दिन बात की
और किसी बुरे से रोग का नाम तुम से सम्बन्धित किया
और मेरा रोम रोम व्याकुल हो उठा

तुम्हारे श्वास मेरे श्वासों में एक रूप हो जायें
और तेरे शारीरिक रोग
मेरे शरीर में समा जाए।
उस रात मैंने स्वप्न देखा
तुम्हारे ताप से मैंने अपनी तन्दुरुस्ती बदलली
और जब तुम पहले की भांति स्वस्थ थे।
कितने ही दिन व्यतीत हो गए
फिर मैंने राह चलते लोगों से सुना
कि जब तुम स्वस्थ थे।

निश्चिन्तता भी हुई।
परन्तु साथ ही प्रतीक्षा भी होने लगी
और आज वर्षों पर वर्ष बीत गए हैं
यह प्रतीक्षा अब सदा मेरे साथ ही रहती है
फिर कभी तुम्हारा पत्र नहीं आया
"मैं फिर आऊंगा"
तुम्हारा यह कथन मेरी निधि है
और यह क्योंकर संभव है
कि तुम्हारा कहा पूरा न हो
तुम ने फिर आने का वचन दिया था,
तुम्हारा वचन क्यों सच्चा न हो,

मेरे स्वप्नों ने तेरे वचनों की लाज रख ली है
और एक बार नहीं
हर बार तुझे लौटा कर ले आते हैं,
ठीक उसी प्रकार मौन में तुझे देखती हूँ
ठीक उसी प्रकार तुम्हारा श्वास मेरी ग्रीवा को स्पर्श करता है

तुम्हारे ओंठ कांपते हैं
और फिर तुम्हारा एक आंसू मेरे प्राणों को भिगो देता है।

दीवारें बहुत ऊँची हैं
जब पाँवों में शक्ति नहीं रहती
सपने जीवन की प्रतीक्षाओं को पूरा कर देते हैं
तुम्हारी विवशताओं को जानने का भी मुझे अधिकार नहीं
कभी कभी जीवन की तृष्णा मेरे ओठों पर प्रबल हो उठती है
और समस्त संसार मुझे उस मरुस्थल की भांति दिखाई देता है
जिसमें कोई "सस्ती" अंतिम श्वास ले रही हो।

वर्ष में एक बार वह मास आता है
जब तुमने मुझे जीवन का प्रथम वचन दिया था
तुम्हारे वचनों का मास
और मुझे ऐसा प्रतीत होता है
जैसे मरुस्थल में किसी ऊँटनी के गले की घंटी बज उठी

यह कैसा प्रदेश है
जहाँ दूर-दूर तक निर्जनता ही निर्जनता दिखाई देती है
परन्तु तुम्हारे वचनों का मास
मुझे लगता है
जैसे लगता है
जैसे निर्जनता के आंगन में
बाहर का एक झोंका हो
जैसे तेरा हाथ
मेरे हाथों पर झुका था
यह चैत्र मास
तेरे वचनों का मास

वर्ष के हाथों पर झुकता है
और उन हाथों में एक बसेरा बना जाता है।
और उसके बल पर मैं सारा वर्ष व्यतीत कर लेती हूँ।
मैं इस मास से कई प्रश्न पूँछती हूँ
पता नहीं यह कैसा विवश है
मुझे उत्तर नहीं देता
वीर सिर झुकाए मेरे पास से गुज़र जाता है
कितनी व्याकुलता है
और मरुस्थल का कहीं अन्त दिखाई नहीं देता
आज रात मैं इसी प्रकार व्याकुल थी
मेरे तपे हुए माथे पर किसी ने अपने करतल से स्पर्श किया।
ऐसे कोमल और शीतल करतल
जिनके जादू से पीड़ा भी आत्म विस्मृत हो जाए
कमल सदृश कोमल उँगलियों से उसने मेरे आँसू पोंछ डाले
और जब मैंने उसके मुख की ओर निहारा
मुझे ऐसा लगा
किसी अप्सरा का मुख इससे अधिक रूपवान हो नहीं सकता
मेरे विकल होंठो ने कहा
"यह स्वप्न है"
"हा जीवन का सुन्दरतम स्वप्न"
और वह मुस्करा दी
मुझे ऐसा लगा
अवश्य इसे देखकर ही फूल पहली बार खिले होंगे
"मैंने तुझे पहले कभी नहीं देखा"
"मैं तुझे चिरकाल से जानती हूँ"
"मुझे ?"

"यदि मैं कहूँ मैं तेरी अभिन्न सहेली हूँ"
"काश ऐसे मधुर असत्य सत्य हो सकते"
"यह सबसे बड़ा सत्य है।
मैं कुछ न कह सकी
मुझे भय था
यह इन्द्रजाल मेरी आवाज़ से कहीं टूट न जाए।
और इन्द्रजाल रचने वाली उसकी आवाज़ आई।
"तेरह वर्ष पहले मैंने तुझे प्रथम बार देखा था"
"तेरह वर्ष ?"
"जब तू खेत की मेंढ़ पर से गुजर रही थी"
मेरा जैसे श्वास अवरुद्ध हो गया
उसने फिर कहा
"रास्ते पानी जल और कीच में डूबे हुए थे
और जब जल के छींटे उड़ कर तेरे वस्त्रों पर पड़ते थे
मैं उनमें केसर का रंग भर देती थी।"
सब वेदनाएं एक साथ मेरे मस्तक में उठीं
और मैंने उसे उलहना दिया
"तू—तूने ऐसा क्यों किया ?"
"तुझे उसकी आवाज़ याद है ?"
"उसकी आवाज़·····।"
मुझे केवल उसी की आवाज़ याद है
और संसार की और कुछ याद नहीं
जिसमें उसका श्वास मिल जाता था
वही पवन सुरभि दे उठता।"
वह हँस पड़ी
मुझे लगा

अवश्य इसके हास्य में ही
प्रथम बार संगीत ने जन्म लिया होगा
और उसने कहा—
"मैं ही पवन को सुरभित किया करती थी"
मेरा श्वास जीवन का एक दीर्घ निश्वास बन गया
उसने अपने कोमल और शीतल करतल से मुझे स्पर्श किया
"मैं तुझे अच्छी नहीं लगती ?

मैंने तेरे स्वप्नों में शुभ्र ज्योत्सना फैलाई थी
और जब काले मेघ छा जाते थे
मैं उन्हें सुनहरी झालरों से सुसज्जित कर दिया करती थी।
मैं तेरह वर्षों से तेरी अभिन्न सखी हूँ
अपने हाथों से
मैंने तेरे नयनों में किसी की प्रतीक्षा का काजल लगाया था।"
मैं जैसे विक्षुब्ध हो गई
"और आयु भर के लिए मेरी पलकें
अश्रुओं से आर्द्र हो गईं....."
उसने मेरे नयनों में झांक कर कहा
"पुष्पों पर जैसे हिम बिन्दु गिरते हैं
नयनों में अश्रु आ जाते हैं
तेरी मुखाकृति बहुत ही स्निग्ध हो गई
वेदना की आँच में, मुख इसी प्रकार हो जाया करते हैं"

और उसकी आँखों में मान छा गया—
"वेदना का वरदान मैं किसी विरले मनुष्य को ही देती हूँ
वेदना हृदय की अमूल्य निधि होती है
और यह निधि मैं व्यर्थ में नहीं लुटा देती"
फिर वह हंस दी—

"वेदना के वरदान में से तेरे प्रथम गीत ने जन्म लिया"
"मेरा प्रथम गीत
यह मैंने प्रथम उसे पत्र लिखा था"
"मुझे ज्ञात है
पहला पत्र
दूसरा पत्र
तीसरा पत्र
और फिर तूने सैकड़ों पत्र लिखे
तेरा हर पत्र पहले पत्र से सुन्दर होता था।"
"और हवाओं ने मेरे सैकड़ों पत्र गंवा दिए
पवन का ऐसा एक भी झोंका न आया
जो मेरे पत्र का उत्तर मुझ तक लौटा लाता"
वह चुप रही
और फिर मैंने तड़प कर कहा
"हमारे समाज की ये कैसी दीवारें हैं
जिनकी दूसरी ओर से कोई पवन भी प्रत्युत्तर नहीं ला कर देती"
"इसी कारण में तेरी आँखों पर
अपने हाथ रखा करती थी
और सभी दीवारें ओझल हो जाती थीं"
मेरे भीतर वेदना की लहर उठी
"केवल मेरे विचारों में
मेरे गीतों में
और मेरे रात के स्वप्नों में
तू मेरे पाँव नहीं देखती ?
उन्होंने दीवारों की ठोकरें खाई हैं
और आज वर्षों बीत गये हैं।

इनकी उंगलियों से रक्त बहता रहता है"
"केवल तेरे पांव ही नहीं
सैकड़ों पांव विक्षत हैं
और उन सैकड़ों को ऐसा प्रतीत होता है
तेरे गीत उन के अपने गीत हैं
तेरे आँसू उनके अपने आँसू हैं"
"होता होगा
पर इससे न मेरे आंसू थमते हैं
न उन के"
फिर मैंने रुक कर कहा
"तू ने मुझे अपना नाम नहीं बताया
परन्तु मैं तेरा नाम समझ गई हूँ"
"क्या है मेरा नाम ?"
"बहुत जादुवी नाम है तेरा
कल्पना——कल्पना"
"हाँ....."
एक अलक कुण्डल उस के मस्तक पर आ गिरा
और मुझे प्रतीत हुआ
इस कुण्डल में जैसे वह मेरे जीवन को आवलित कर रही थी
मेरे शरीर में एक सिहरन उठी
"कल्पना.....मेरी कल्पना
अब मैं तेरी रेशमी अलकों के गीत नहीं लिखूंगी
बड़ी सुनहरी तारे हूँ
परन्तु इनका जाल मेरा कुछ नही संवारता
इन के नीड़ में कैसे कोई रह सकता है ?
हमारी धरती से बहुत धूल उड़ती है

हमारे दिगंत में असंख्य आँधियां उठती हैं
हमारे आकाश से घनघोर बिजलियां टूटती हैं।
तेरी अलकों के नीड़ अति सुन्दर हैं
परन्तु वे हमारे वृक्षों पर निर्मित नहीं ले सकते,
हमारे वृक्षों पर स्वपप्नों की मंजरी आती है
किन्तु शान्ति और समृद्धि का पता नहीं लगता।
हमारे खेतों में गेहूँ उत्पन्न होती है
परन्तु उसे शोषक हस्तगत कर लेते हैं
और तेरे नीड़ के पक्षी बिना आहार दम तोड़ देते हैं।
और कल्पना
हमारे बनों में शिकारी बहुत हैं
तू जब अपने पक्षियों के पंखों में उड़ान भरती है
शिकारियों के जाल क्यों नहीं देखती ?
तू अपने पक्षियों को जो गीत सीखाती है
तू क्यों नहीं समझती
कि वे गीत लौह शलाकाओं से टकरा कर निःशब्द हो जाते हैं...
और मेरी वाणी विकल हो उठी
"तू पाषाण है कल्पना पाषाण
तेरे चमक में से अग्नि पैदा होती है
किन्तु इस अग्नि से हमारे घरों के चूल्हे नहीं सुलगते
शोषक यह अग्नि हम से छीन कर ले जाते हैं
और हमारे भरपूर खलिहान जल कर राख हो जाते हैं।
यह दावानल बन जाती है
यह विनाश का ऐटम बन जाती है
नगरों के नगर हमारे खंडहर हो जाते हैं
हँसते गाते लोग पल भर में जान तोड़ देते हैं।

कल्पना .....मेरी कल्पना
तू संसार की सर्व-श्रेष्ठ सुन्दरी है
तेरे सौन्दर्य ने अमर फल खाया था
अतः वह कभी मर नहीं सकता
एक नहीं सहस्रों "शैले"
तुझ पर प्राण न्योछावर कर देंगे
एक नहीं सहस्रों बालिकायें
लोक गीतों की रचना करेंगी
किन्तु तेरा सौंदर्य
किसी के नयनों पर जब हाथ रखता है
दीवारों को क्यों भूल जाता है
शिकारियों के जाल क्यों नहीं देखता
लुटेरों के पंजे क्यों नहीं देखता
और मेरी जान !
तुझ से प्रेम करने वाले
विरहा के गीत लिखते-लिखते मर जाते हैं
शान्ति और स्वतन्त्रता के गीत लिखने वाले
कब तक राजनीतिक शृखंलाओं में जकड़े रहेंगे
और लोक गीतों की सुन्दरियां
कब तक सामाजिक बन्धनों में सांस तोड़ती रहेंगी ?
नहीं, प्रिये अब नहीं
मैं अब रेशमी गीत नहीं लिखूंगी
अब मेरे गीत कोमल अश्रुओं में से जन्म नहीं लेंगे
अब मेरे अक्षर स्पात के खण्ड बनेंगे
और ये दीवारें गिरेंगी
मेरे गीत "फरहाद" का कुदाल बन जायेंगे

और इन पाषाणों में से जल की नदी बह निकलेगी।
ये पत्थर दीवारें
शिकारियों के जाल
और लुटेरों के पंजे....."
बस प्रिये ? बस
आज यही स्वप्न लेकर मैं तेरे पास आई थी
मैं तेरी अभिन्न सखी हूँ
और तेरी अभिन्न सखी ही रहूँगी
अपना दायाँ हाथ मुझे दे
तुझे स्मरण है ?
तेरे इस हाथ को तेरे प्रिय ने चूमा था
और तूने इस हाथ से उसके लिए प्रेम के गीत लिखे थे,
अब तू अपने प्रिय के चूमे हुए हाथ से
रेशम के नहीं इस्पात के गीत लिखना
ताकि संसार की यह व्यवस्था बदल जाए
यह व्यवस्था
जो दीवारों, शिकारियों और लुटेरों को जन्म देती है।
प्रिय।
आज मैं यही स्वप्न लेकर तेरे पास आई थी"

उसका स्पर्श मेरे रोम रोम में बस गया
परन्तु जब मैंने आँखे झपकीं"
मुझे उसकी अप्सराकृति दिखाई न दी।

कल्पना आई थी
रेशम के सभी तार मैंने उसे लौटा दिये

और मैंने उसे कहा
अब वह मेरे शब्दों में एक ज्वाला डाल दे
मेरे प्रिय।
इसी लिए आज मैं तुझे अन्तिम पत्र लिख रही हूँ
और इसके उपरान्त मैं तुझे और पत्र नहीं लिखूंगी
जो दीवारें मेरे पत्रों को तुझ तक नहीं पहुँचने देतीं"
और तुम्हारे पत्रों को मुझ तक नहीं आने देतीं
अब उन दीवारों के पाँव तले
मैं और पत्रों को नष्ट नहीं होने दूंगी
और फिर जब तुम मेरे संग्राम गीतों को पढ़ोगे
तब यह न सोचना कि मैं तुम्हें पत्र लिखना भूल गई हूँ
विश्वास रखना
मैं अपने हाथों से इसलिए संग्राम के गीत लिखूंगी
कि इन हाथों को तुमने चूमा था,
और फिर मैं एक नये प्रभात की प्रतीक्षा करूँगी
एक नया प्रभात
जो इस क्रूर व्यवस्था को बदल देगा
विश्व की इस व्यवस्था को
जो दीवारों, शिकारियों और लुटेरों को जन्म देती है
और यदि मेरे जीवन में यह प्रभात उदय हुवा
तो मैं नए प्रभात की प्रथम किरणों से
तुझे अपने प्रेम का सुनहरी पत्र लिखूंगी।